वनवासी सेवा, संगठन और संस्कृति संरक्षण हेतु समर्पित

कल्याण भारती

जनजातीय पर्व एवं त्यौहार
विशेषांक

पर्व मनें, त्यौहार मनाएँ,
हर्षित मन से नाचे गाएँ।
वन-उपवन उल्हास बिखेरें,
भारत माँ की शान बढ़ाएँ।।

कल्याण भारती

वनवासी सेवा, संगठन और संस्कृति संरक्षण हेतु समर्पित

त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष - 28 अंक -4

अक्टूबर-दिसम्बर 2017 (विक्रम संवत् 2074)

सम्पादक

स्नेहलता बैद

–सम्पादन सहयोग–

तारा माहेश्वरी, रजनीश गुप्ता

पूर्वांचल कल्याण आश्रम

कोलकाता कार्यालय :

161/1, महात्मा गांधी रोड, बांगड़ बिल्डिंग

2 तल्ला, कमरा नं. 51, कोलकाता - 7

दूरभाष : 2268 0962, 2273 5792

प्रांतीय कार्यालय :

29, वार्ड इन्स्टीच्युशन स्ट्रीट

(मानिकतल्ला पोस्ट ऑफिस के पास)

कोलकाता - 6, दूरभाष : 2360 8334

हावड़ा कार्यालय :

13/14, डबसन लेन, 4 तल्ला,

गुलमोहर पार्क के पास

हावड़ा - 1, दूरभाष-2666–2425

–प्रकाशक–

विश्वनाथ बिस्वास

Registered with registrar of Newspaper
for India Under LIC No. WBHN/2000/3887

Published by Bishwanath Biswas, on behalf of Purvanchal Kalyan Ashram, 161/1, Mahatma Gandhi Road, Bangur Building, 2nd Floor, Room No. 51, Kolkata-700 007 and printed at Shreyansh Prakashans, 30 Madan Mohan Talla Street, Kolkata-700 005. Editor : Snehlata Baid

अनुक्रमणिका

- ❖ संपादकीय 2
- ❖ शुभाशंसा 3-5
- ❖ जनजाति उत्सव में भारतीय..... 6
- ❖ भारतीय जनजातियों के पर्व... 9
- ❖ मध्य भारत के जनजातीय पर्व.... 16
- ❖ अभिनंदन 20
- ❖ भारतीयता को मजबूत करते हैं ... 21
- ❖ अनुकरणीय 22
- ❖ 'ब्रू' (रियांग) जनजाति के महत्वपूर्ण... 23
- ❖ सिक्रेनी त्यौहार 25
- ❖ उत्तराखंड के पर्व एवं त्यौहार.... 26
- ❖ करमा पूजा 27
- ❖ उत्साह और उमंग का प्रतीक.... 28
- ❖ जनजाति समाज के पारंपरिक.... 29
- ❖ गौण्ड जनजाति... 30
- ❖ आदि जनजाति के उत्सव त्यौहार... 31
- ❖ राजस्थान की जनजातियों के पर्व.... 34
- ❖ शोक संवाद 38
- ❖ नागा जनजाति जेलियांगरोंग.... 39
- ❖ कविता 40
- ❖ बोधकथा 40

संपादकीय...

भारतीय संस्कृति उत्सवधर्मिता की संस्कृति है

'उत्सवप्रिया: हि लोका:' महाकवि कालिदास का यह कथन भारतीय जनजीवन का सार है। हमारे यहाँ एक कहावत प्रचलित है - 'सात वार नौ त्यौहार'। वर्ष का हर दिन किसी न किसी पर्व या त्यौहार से जुड़कर विशेष बन जाता है। पर्व और त्योहार भारतीय सभ्यता की पहचान है। कोई सभ्यता कितनी उन्नत है, इसका इससे पता चलता है कि उसमे पर्व-उत्सव का रस-आनंद कितना है। भारतीय संस्कृति तो पूरी तरह उत्सवमय है। उत्सव हमें प्रकृति के दिव्य सौन्दर्य एवं पावन मधुरता की ओर ले जाते हैं। उत्सवप्रियता हमें जीवन के प्रति सकारात्मक दिशा प्रदान करती है तथा जीवन को खुशी एवं आनन्द से भर देती है। उत्सवों के कारण हम अपना समस्त दु:ख बिसार देते हैं तथा सामूहिक रूप से सुख, उल्लास एवं उमंग से भर उठते हैं। किसी भी काम को लंबे समय तक करते रहने से एक जड़ता सी घेर लेती है, उबाऊपन आ जाता है। ऐसे में उत्सव उस जड़ता को काटते हैं और उबाऊपन के स्थान पर जीवन में सरसता, सहजता, मधुरता, उत्साह, उमंग एवं उल्लास का संचार करते हैं। उत्सव हमारे जीवन में दो तरह से खुशियाँ भरते हैं। एक उसका श्रेय भाग है दूसरा उसका प्रेय भाग है। हमारी ऋषियों ने उसमें हमारे जीवन दर्शन को अभिव्यक्त किया है। उसके पीछे जीवन की समझ एवं विकास के महत्वपूर्ण सूत्र समाहित है। यह इसका श्रेय भाग है और उत्सव से जो खुशियाँ प्राप्त होती है, वह उसका प्रेय भाग है।

जहां तक जनजातीय समाज का प्रश्न है, यह समाज त्यौहारों एवं पर्वों से अभिन्न रुप से जुड़ा है। यह मनोरंजन के लिए किसी कृत्रिम साधन पर निर्भर कतई नहीं हैं वरन यह तो अपनी खुशियाँ प्रकृति के नदी, पहाड़, पौधे, फसल, नृत्य, गायन इत्यादि में तलाश लेते हैं। प्रकृति के ये सच्चे उपासक प्रकृति में खुशियाँ ढूंढते हैं और प्रकृति से ही अपने सुख दु:ख साझा करते हैं। इनका हर पर्व प्रकृति के हर रंग को समर्पित है और हर पर्व से जुड़ी कोई न कोई लोककथा ,मान्यताएं एवं नृत्य,वेशभूषा व गायन की विशिष्ट विधा है। पर्वों एवं मेलों के लिए इनमे उत्साह और समर्पण पूरे भारतवर्ष में एक जैसा है चाहे उत्तर में जम्मू कश्मीर हो या दक्षिण में केरल, पूर्व में मणिपुर हो या पश्चिम में गुजरात । ये जनजातियां बेशक शिक्षा या दिखावे वाली तहजीब से दूर हों मगर अनेक विशेषताओं से युक्त है। अभाव में भी आनन्द के तत्व ढूंढ लेना एवं रात-रात भर नाचना-गाना वनवासी का स्वभाव है। इन त्यौहारों के मायने आज के समय में भी बहुत गहरे हैं। कहा जा सकता है कि जनजातीय समाज पर्वों से ही जीवनी शक्ति प्राप्त करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सोचे तो उत्सव के दौरान शरीर के अंग-प्रत्यंग मुखर हो जाते हैं जिनके द्वार से ऊर्जा का जागरण होता है और अहंकार का पुँज निस्तेज हो जाता है। व्यक्ति की मानसिक प्रसन्नता बनी रहती है। मानसिक प्रसन्नता आनंद का रुप ले लेती है। आनंद का ही दूसरा नाम है परमात्मा। नि:संदेह परमानंद और परम सुख के प्रदाता जनजातीय त्यौहार पश्चिम की भोगवादी संस्कृति के विपरीत भारतीय जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति है।

पूर्वांचल कल्याण आश्रम प्रतिवर्ष वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में वनवासी एवं अरण्य संस्कृति पर केंद्रित स्मारिकायें प्रकाशित करता है। इस श्रृंखला में इस वर्ष की स्मारिका जनजातीय पर्वों एवं त्यौहारों पर केंद्रित है। हम अभारी है उन कवियों, लेखकों, साहित्य प्रेमियों के जिनकी प्रभावी एवं शोधपूर्ण रचनायें इस विशेषांक में संग्रहित की गई है। स्मारिका के सुहृद विज्ञापनदाताओं के प्रति भी हम अभारी है। आशा है विशेषांक सदा की भाँति आपको पसंद आयेगा। पूरी सावधानी के बावजूद त्रुटियां रह जाना संभव है। इसके लिए हम अग्रिम क्षमाप्रार्थी है। आपकी सम्मति और सकारात्मक सुझाव हमारा मार्गदर्शन करेगें। इति शुभम् !

- स्नेहलता बैद

Phone : (07763) 223253, 223620
Fax : (07763) 220885
Registration : 79, Date : 09-10-1956

AKHIL BHARATIYA VANVASI KALYAN ASHRAM

P.O. & DIST. : JASHPUR NAGAR (CHHATISHGARH) PIN: 496 331

FOUNDER PRESIDENT : R.K. DESHPANDE
GEN. SEC. : CHANDRAKANT DEO
ORG. SEC. : SOMAIYA JULU
PRESIDENT : J.R.ORAON

दिनांक : 22 नवम्बर, 2017

शुभाशंसा

प्रति,
श्रीमती स्नेहलता बैद, संपादिका 'कल्याण भारती'
पूर्वांचल कल्याण आश्रम कोलकाता

महोदया,
सादर सप्रेम नमस्कार!

दूरभाष से आपका संदेश मिला। अत्यंत हर्ष का विषय है कि 'कल्याण भारती' पूर्वांचल कल्याण आश्रम की त्रैमासिक पत्रिका, का 17 दिसम्बर 2017 को कोलकाता हावड़ा महानगर के वार्षिकोत्सव के शुभ अवसर पर जनजाति पर्व एवं त्यौहार विशेषांक प्रकाशित हो रहा है।

वनवासियों में ऋतुओं के अनुसार वर्ष भर उत्सव होते रहते हैं। उनमें कुछ पारिवारिक, सामूहिक, सामाजिक होते हैं। उत्सव किसी न किसी मान्यता, परम्परा से जुड़े होते हैं। उत्सव विभिन्न ऋतुओं में कृषि उपज तथा वनोपज पर आधारित होते हैं। उत्सव विशिष्ट जनजाति के होने पर भी सभी जनजाति तथा पूरे हिन्दू समाज में सामान्य रूप से मनाया जाता है।

आशा है आप 'कल्याण भारती' पत्रिका में जनजाति पर्व एवं त्यौहार 17 दिसम्बर 2017 को कोलकाता, हावड़ा महानगर के वार्षिकोत्सव के शुभ अवसर पर संपादन एवं प्रकाशन में यशस्वी होंगी। कल्याण भारती के प्रकाशन, सम्पादन तथा वार्षिकोत्सव के सफल आयोजन के लिए हमारी हार्दिक मंगल शुभकामनाएं।

आपका

जगदेव राम उरांव

Mumbai Office : 35, Chanchal Smriti, G.D. Ambedkar Road, Wadala, Mumbai-400 031, Ph. : 24129615

दूरभाष : 022-24129615
फैक्स/दूरभाष : 022-24131969
पंजीकृत क्रमांक : 79

अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम

35, चंचल स्मृति, ग.द.आंबेकर मार्ग, वडाला, मुम्बई-400031
E-mail : kalyanashram2010@gmail.com

संस्थापक अध्यक्ष : र.के.देशपाण्डे
महामंत्री : चन्द्रकांत देव
संगठन मंत्री : सोमया जुलु
अध्यक्ष : जगदेव राम उरांव

दिनांक : 18 नवम्बर, 2017

आदरणीय श्रीमती स्नेहलताजी बैद

नमस्कार,

यह अति प्रसन्नता का विषय है कि कोलकाता महानगर अपना वार्षिकोत्सव दिनांक 17 दिसम्बर 2017 को मनाने जा रहा है। आप सभी कार्यकर्ता इसकी सांगठनिक सफलता के लिए कटिबद्ध होकर कार्यरत हैं, ऐसा विश्वास है। आप सभी को इस कार्य की सफलता के लिए शुभेच्छा।

इस अवसर पर कल्याण भारती ''वनवासी उत्सव-पर्व त्यौहार'' प्रकाशित करने की योजना कर रही है। यह अतीव प्रसन्नता का समयोचित विषय है। वनवासी समाज निसर्ग पूजक है और अपनी धार्मिक सामाजिक मान्यताओं को इसी आधार पर विकसित करता आया है। ये मान्यताएं मनुष्य समाज की व्यक्तिगत और राष्ट्रीय भावनाओं की पृष्ठभूमि हैं। ये मान्यताएं उत्सवों में, पर्वों में और त्यौहारों में प्रकट होती हैं। कल्याण भारती के इस विशेषांक से समाज में जागृति लाने के प्रयास में महत्वपूर्ण योगदान रहेगा, ऐसा विश्वास है। यह विशेषांक अधिकाधिक व्यक्तियों को वनवासी समाज के मूल विचारों से परिचित कराने में और कर्तव्यबोध से अधिकाधिक कार्य करने की प्रेरणा दे, मैं परम शक्तिशाली भगवान से यही प्रार्थना करता हूँ।

आपका

(सोमैया जुलू)
अ.भा. संगठन मंत्री,
अ.भा.वनवासी कल्याण आश्रम

केन्द्र : जशपुर नगर, जिला : जशपुर (छत्तीसगढ़)-496 331 • दूरभाष : (07763) 223253 • फैक्स : (07763) 220885

अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम

(पंजीबद्ध पं.क्र.79)

जशपुरनगर - 496 331 (छत्तीसगढ)

मुंबई - 400031

दिनांक : 20 नवम्बर, 2017

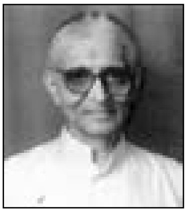

आ. श्रीमती स्नेहलताजी बैद
संपादक, कल्याण भारती (हिंदी)
कोलकता (प.बंगाल)
सादर प्रणाम !

आपके द्वारा प्रेषित पत्र मिला। बंगाल में भी जनजातीय समाज की जनसंख्या अच्छी खासी है। सामान्य रुप से भारत की और विशेष रुप से बंगाल के जनजातीय समाज की जानकारी, उसका अतीत और वर्तमान, उनकी समस्याएं और उपाय या सुझाव, वहां पर चलने वाली विविध प्रकार की अच्छी या बुरी गतिविधियां, समाचार, समाजसेवी लोगों द्वारा चलने वाली गतिविधियां और उनके संबंध में जानकारियां आदि प्राय: भारतीयों को ठीक से मिलती ही नहीं, जो अल्प ही रहती है।

विगत अनेक वर्षों से 'कल्याण भारती' सामयिक प्रकाशित हो रहा है जिसमें ऊपर उल्लेखित तथा अन्य उपयोगी विषयों की जानकारी दी जाती है। दिसंबर माह में प्रकाशित होनेवाला विशेषांक, सुंदर और जानकारियों से भरपूर होगा, प्रेरणास्पद रहेगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इससे वनवासी - नगरवासी - ग्रामवासी भारतीयों को लाभ मिल रहा है जो सारे समाज को जोड़ने का, एकरस करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। अत: इसके लिए मैं आपको एवं आपके सभी सहयोगी कार्यकर्ताओं को धन्यवाद देता हूँ। आपका यह कार्य और अधिक व्यापक रुप ग्रहण करे, ऐसी शुभकामना करता हूं। इस श्रेष्ठ कार्य पर ईश्वर की कृपा बरसती रहे, यह प्रार्थना उसके ही श्रीचरणों में करता हूँ।
शेष शुभ,

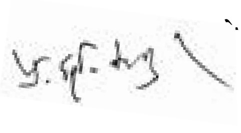

संस्थापक सदस्य
अ.भा.वनवासी कल्याण आश्रम

जनजाति उत्सव में भारतीय जीवन दर्शन

- प्रमोद पेठकर, अ.भा.प्रचार प्रसार प्रमुख

भारतीय तत्वज्ञान कहता है कि मानव जीवन एक उत्सव है। अपना जीवन सुख-दुखों से भरा होगा, यहाँ हम प्रतिदिन धूप-छाँव का अनुभव करते होंगे परन्तु परमात्मा ने हमें यह जो जीवन दिया है उसे हम एक उत्सव के रूप में देखें। सभी परिस्थितियों में प्रतिदिन, प्रतिक्षण आनंद में रहें, उसे हँसते-खेलते व्यतीत करें। स्वयं आनंद में रहें, सभी को आनंद दें।

उपरोक्त विचारों की अनुभूति करनी हो तो हमें कुछ दिन वन-पर्वतों के गाँवों में जाना चाहिए, अपने वनवासी बन्धुओं के साथ रहना चाहिए। चाहे ढोल-ताशे के ताल पर समूह नृत्य हो या गीत, बाँसुरी का वादन हो या वन विहार, सभी में आनंद है। अधिकतम 'उत्सव' वर्षा के बाद जब फसल घर पर आती है, उसके पश्चात होते हैं। सभी उत्सवों का सम्बन्ध किसी न किसी भगवान की पूजा अथवा आराधना से जुड़ा है। इस निमित्त स्थान-स्थान पर होता है मेले का आयोजन। जहाँ समाज रंग-बिरंगें कपड़े पहन कर, सज-धज कर बड़े आनंद-उल्लास के साथ एकत्रित होता है। आसपास के गाँवों से कोई पैदल चल कर आते हैं तो कोई बैलगाड़ी में। वहाँ होता है समूह नृत्य एवं विभिन्न प्रकार की कलाओं का आविष्कार। मानो ! मानव जीवन सोलह कलाओं के साथ खिल उठता है।

देश के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण या मध्य क्षेत्र, कहीं भी जाओ विभिन्न रूपों में हम उत्सवों के आयोजन देख सकते हैं। जनजातियों की स्थानीय परम्पराओं का दर्शन होता है। सभी का स्वरूप अलग-अलग हो सकता है परन्तु एक ही भारतीय संस्कृति के हम दर्शन करते हैं। सभी के आयोजन का आधार धर्म है।

जाने-अनजाने हम कभी-कभी वनवासी उत्सव-परम्परा, वनवासी संस्कृति ऐसा वर्णन सुनते हैं। मानो ये परम्परा, संस्कृति हमसे कोई अलग है। इस संकल्पना को सही रूप में वर्णित करें तो भारतीय उत्सव-परम्परा, भारतीय संस्कृति ऐसा ही कहना उचित होगा। जब अपने वनवासी बंधुओं का जीवन भारतीय जीवन के साथ अभिन्न रूप में जुड़ा है तो उसका अलग वर्णन करने की आवश्यकता ही नहीं है। **देश के किसी भी कोने में जाएँ सभी जगह एक ही संस्कृति है, वह है भारतीय संस्कृति अर्थात 'हिन्दू संस्कृति'।**

आइए! हम कुछ उत्सवों के बारे में जानकारी प्राप्त करें। भारत के पूर्व में बंगाल, ओड़िशा प्रान्त हैं और पूर्वोत्तर में असम, अरुणाचल, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, नागालैण्ड और त्रिपुरा जैसे सात राज्यों का समूह है। साथ में चीन, भूटान की सीमा से सटा हुआ सिक्किम है। इन राज्यों में कई जनजातियाँ रहती हैं। भौगोलिक विविधता तो है ही साथ में अपने-अपने जनजाति समूह की कुछ अन्य विविधता भी हैं और सभी में एक समान संस्कृति का सूत्र भी दिखाई देता है। इसलिये विविधता में एकता हम सबकी विशेषता, ऐसा कहना इस भूमि का एक गौरव है।

मिजो जनजाति में लुशेरी, मारा, लाई आदि कुछ महत्वपूर्ण उपजातियाँ हैं। लोग वर्ष में कई त्यौहार मनाते हैं। प्रकृति के ऋतुचक्र में वसंत आते ही **चापचुर कुट** मनाया जाता है। यह मिजोरम के मुख्य त्यौहारों में से एक है। प्रसिद्ध बांस नृत्य या चेरौ स्थानीय लोगों द्वारा बड़ी धूमधाम से किया जाता है। एक दूसरा पारंपरिक नृत्य खुआल लैम भी वसंत के आगमन को दर्शाने के

लिए किया जाता है। इस त्यौहार के दौरान स्थानीय लोग अपनी कुशल हस्तशिल्प और हैंडलूम की प्रदर्शनी लगाते हैं। चूंकि कृषि मिजोरम के लोगों का मुख्य व्यवसाय है, इसलिए भूमि की निराई **थालफावयुंग कुट** त्यौहार के साथ मनाई जाती है। यह त्यौहार लोगों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। रीक पहाड़ पर मनाया जाने वाला तीन दिवसीय **एंथूरियम** त्यौहार पर्यटकों के लिए एक बड़ा आकर्षण है। यह त्यौहार हर साल सितंबर के महीने में मनाया जाता है और **एंथूरियम** के पूरी तरह से खिलने का प्रतीक है। यद्यपि वर्तमान में मिजोरम एक इसाई बहुल राज्य है परन्तु समाज में उत्सव मनाने की परम्परा में तो वर्षों से चली आई भारतीय परम्परा की तरह ही दिखाई देती है। उत्सव मनाने के कुछ अपवाद अवश्य होंगे परन्तु समाज के अन्तर प्रवाह में आज भी हिन्दू संस्कृति ही प्रवाहित हो रही है, ऐसा दिखाई देता है।

मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड जैसे जनजाति बहुल राज्यों का भारत का मध्य क्षेत्र अपनी प्राकृतिक सम्पदा एवं विभिन्न जनजाति समूह के लिये जाना जाता है। देश की जनजाति संख्या का अधिकतम् प्रतिशत इन्हीं राज्यों में है। मुण्डा, संथाल, उरांव, गोण्ड, कोल, बैंगा, बंजारा, बिरहोर, हो, खरवार, कोरबा जैसी कई जातियाँ हैं। अकेले झारखण्ड राज्य में 32 जनजाति समूह शासन की सूची में हैं। अलग-अलग जनजातियों में अपने अपने उत्सव होते हैं। उसमें कुछ साम्य अवश्य है और कुछ विविधता भी है। इसमें से हम आज यहां केवल **सरहुल** उत्सव की बात करेंगे।

छत्तीसगढ़, झारखण्ड जैसे राज्यों में जनजाति समाज का सरहुल एक प्रमुख उत्सव है। वसंत ऋतु आने पर पेड़ों पर जब नए फूल खिलते हैं तब समाज के लोग भगवान शिव व माता पार्वती के अलावा चाला देवी की पूजा करते हैं। इसमें सराई पेड़ व इसके फूल का उपयोग होता है। समाज का बैगा (पुजारी) पूजा करता है। सभी लोग एक जगह एकत्र होकर लोक नृत्य व गायन प्रस्तुत करते हैं। इसकी तिथि को लेकर समाज में दो मान्यताएं हैं। एक वर्ग वर्ष प्रतिपदा और दूसरा चैत्र मास की पूर्णिमा के दिन मनाता है।

वसंत ऋतु में पेड़ों पर जब नए फूल आते हैं वह जनजातियों के रक्षक माने जाते हैं, जिससे गांव देवता की पूजा होती है। गांव का पुजारी या पाहन कुछ दिनों के लिए व्रत रखते हैं। सवेरे वह स्नान कर कुंवारी कपास (कच्चा धागा) से बनी नई धोती पहन कर पिछली शाम को जो तीन नए मिट्टी के बर्तन रखे हैं उसे ले जाता है और ताजा पानी के साथ उन्हें भरता है। एक मान्यता के अनुसार रात को जिस मिट्टी के बर्तन में पानी भरा था वह यदि कम हो गया है तो उस वर्ष बारिश कम होगी, अकाल हो सकता है और यदि मिट्टी के बर्तन में जल स्तर उतना ही रहा तो उस वर्ष अच्छी बारिश के संकेत हैं।

पश्चिम में बसा है गुजरात जिसके वलसाड, डांग, सूरत, नर्मदा, छोटाउदेपुर से लेकर बनासकांठा तक दक्षिण, मध्य एवं उत्तर गुजरात के 14 जिलों में वनवासी समाज निवास करता है। वसावा, चौधरी, दुबला, मावची जैसी कई जनजातियाँ गुजरात के नर्मदा जिले में तथा आसपास के क्षेत्र में पायी जाती है। इससे सटा हुआ महाराष्ट्र अक्कलकुवा तहसील है। जनजाति समाज के समान जाति के लोग दोनों राज्यों में रहते हैं। सभी के अपने-अपने कुलदेवता हैं जो याहामोगी माता के नाम से जानी जाती है। नर्मदा जिले के सागबारा तहसील के देवमोगरा गांव में एक विशाल मंदिर है इसलिये इस देवी को देवमोगरा माता के रूप में भी जानते है। याहामोगी माता, देवमोगरा माता, पांडोरी माता जैसे कई नामों से देवी जानी जाती है। पहले कभी जब स्थापना हुई, तब यह मंदिर केवल एक छोटी सी झोपड़ी में था। जिस दिन मूर्ति की स्थापना की गई उस दिन महाशिवरात्रि थी। तबसे प्रति वर्ष महाशिवरात्रि पर एक भव्य मेले का आयोजन होता है। बहुत बड़ा उत्सव होता है। आसपास के वनवासी बन्धु परिवार के साथ दर्शन करने दूर-दूर से आते हैं। जनजाति परिवार

के कई लोग दर्शन के पूर्व कठिन व्रत का पालन करते हैं। जैसे नंगे पाँव दर्शन करने आना, जितने दिनों का व्रत है उतने दिन ब्रह्मचर्य का पालन करना, जमीन पर सोना, सूर्योदय से पूर्व स्नान करना इत्यादि। माता के मंदिर के आसपास लगे मेले का स्वरुप, उत्सव की भव्यता, लोगों के मन में धर्म के प्रति दिखाई देने वाली श्रद्धा देखें तो आश्चर्य होता है। दर्शन के लिए वहां लाखों की संख्या में एकत्रित जनजाति समाज का अनुशासन अभिनंदनीय है। देवमोगरा मे ंधर्म है, श्रद्धा है, उत्सव है, आनंद है और आध्यात्मिक अनुभूति भी।

अब हम थोड़ा उत्तर भारत के बारे में विचार करेंगे। वैसे पंजाब, हरियाणा, दिल्ली में कोई जनजाति जनसंख्या नहीं है। परन्तु हिमाचल प्रदेश में जनजाति है। सबकी अपनी-अपनी परम्पराएँ हैं, विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाना संस्कृति का अंग है।

नवाला यह हिमाचल प्रदेश के गद्दी जनजाति का धार्मिक उत्सव है। ये जनजाति कांगड़ा और चंबा जिलों के निवासी हैं। अधिकतम पहाड़ी क्षेत्र में रहने वाले ये पशुपालक हैं। भेड़-बकरी चराना इनका मुख्य व्यवसाय है। प्रामाणिकता के लिये जाने जाते गद्दी समाज की अपनी टाकरी नाम की एक भाषा है, वैसे ये हिन्दी एवं पहाड़ी भाषा भी बोल लेते हैं। गद्दियों के नवाला उत्सव का कोई निश्चित दिवस नहीं होता। वर्ष में एक बार उत्सव मनाने वाले उत्सव की विशेषता यानि सारी रात भगवान शिव की आराधना होती है और शिव के गीत गाये जाते हैं।

भारत के दक्षिण क्षेत्र का विचार करें तो केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश दिखते हैं। कम अधिक संख्या में सभी राज्यों में जनजाति जनसंख्या रहती है। आंध्र प्रदेश-तेलंगाना के चेंचू हो या कर्नाटक के सिद्दी, तमिलनाडु के टोडा हो या केरल के पनिया सभी जनजातियों का हिन्दू संस्कृति के साथ अभिन्न नाता है। जैसे भारतीय समाज बरगद, पीपल, तुलसी की पूजा करते हुए अपना प्रकृति प्रेम दर्शाते हैं वैसे ही जनजाति समाज भी प्रकृति पूजक तो है ही क्योंकि उसका निवास ही प्रकृति के साथ वनों में है तो उत्सव मनाने की परम्परा में भी यह प्रकृति प्रेम देख सकते हैं। अग्नि, जल, वायु, भूमि और आकाश जैसे पंचतत्वों के साथ भी उतना ही नाता है। दीपावली के दिनों में घर-घर में दीप मालाएं दिखाई देती हैं, वैसे ही तमिलनाडु में दीप पूजा के माध्यम से उत्सव मनाया जाता है। जनजाति गाँवों में महिलाएं एकत्रित होकर दीप पूजा करती हैं। सम्पूर्ण समाज के साथ अभिन्नता का यह परिचायक है। तेलंगाना के चेंचु जनजाति के लोग धार्मिक रूप में प्रचंड संख्या में एकत्रित होकर **चेंचू लक्ष्मी** की पूजा करते हैं। यह बहुत बड़ा उत्सव होता है। संक्षेप में कहें तो भारत के पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण सभी क्षेत्रों में बसे अपने जनजाति बन्धुओं के समाज जीवन में उत्सवों का अत्यधिक महत्व है। जीवन में चाहे कितनी प्रतिकूलता हो, उत्सव मनाते समय सभी आनंद का अनुभव करते हैं। आगे के जीवन के लिये एक नवीन ऊर्जा प्राप्त करते हैं। जैसे विभिन्न प्रदेशों में खान-पान में, पहनावे में, भाषा में विविधता है वैसे ही इन उत्सवों के स्वरूप में भी विविधता है परन्तु उसका आधार समान है। वह है अपनी गौरवशाली संस्कृति के आदर्श अथवा मूल्य जिनके कारण समाज में सुख-समृद्धि, आनंद का हमें दर्शन होता है। ❑

अमृत वचन

- *समय हमें कुछ भी साथ ले जाने की अनुमति नहीं देता, लेकिन वह अपने बाद अमूल्य कुछ छोड़ जाने का भरपूर अवसर देता है। - कुंवर नारायण*
- *अपने लक्ष्य के प्रति, अपनी साधना के प्रति, अपने नेता के प्रति समर्पण ही चिरशांति का मार्ग है। -आचार्य महाश्रमण*
- *कार्य की अधिकता नहीं, अनियमितता आदमी को मार डालती है। -महात्मा गांधी*

भारतीय जनजातियों के पर्व एवं मेले

-सपना मांगलिक : पत्रकार, साहित्यकार

गम बिछड़ने का नहीं करते खानाबदोश ....
वो तो वीराने बसाने का हुनर जानते हैं

ये पंक्तियाँ भारत में दूरदराज एवं दुर्गम इलाकों में निवास करने वाली वनवासी जनजातियों के जीवन, जिजीविषा और जीवट पर पूरी तरह सटीक बैठती हैं। भारत लगभग 600 से भी अधिक जनजातियों एवं कबीलों का घर है। दक्षिण अफ्रीका के बाद भारत में इनकी संख्या दूसरे नंबर पर है। **पर्व एवं त्यौहार इन जनजातियों के जीवन का अभिन्न अंग है।**
वे मनोरंजन के लिए किसी कृत्रिम साधन पर निर्भर कतई नहीं हैं अपितु अपनी खुशियाँ प्रकृति के नदी, पहाड़, पौधे, फसल, नृत्य-गायन इत्यादि में तलाश लेते हैं। प्रकृति के ये सच्चे उपासक प्रकृति में खुशियाँ ढूंढते हैं और प्रकृति से ही अपने सुख दु:ख साझा करते हैं। इनका हर पर्व प्रकृति के हर रंग को समर्पित है और हर पर्व से जुड़ी कोई न कोई लोककथा, मान्यताएं एवं नृत्य,वेशभूषा व गायन की विशिष्ट विधा है। पर्वों एवं मेलों के लिए इनमे उत्साह और समर्पण पूरे भारतवर्ष में एक जैसा है चाहे उत्तर में जम्मू कश्मीर हो या दक्षिण में केरल, पूर्व में मणिपुर हो या पश्चिम में गुजरात। ये जनजातियां बेशक शिक्षा या दिखावे वाली तहजीब से दूर हों मगर स्त्री को बराबरी का दर्जा देती है। दहेज़ हत्या, भ्रूण हत्या, छूआछूत से कोसों दूर हैं। युवाओं को डराकर या अपनी इच्छाओं के बोझ तले नहीं कुचला जाता बल्कि घोटुल जैसे युवाघर बनाकर इन्हें व्यावहारिक शिक्षा दी जाती है।

छत्तीसगढ़, ओड़िशा, झारखण्ड एवं बिहार की जनजातियों के पर्व :

बस्तर का दशहरा

बस्तर के दशहरे में रावण को मारा नहीं जाता बल्कि चालुक्य वंश की कुलदेवी माँ दंतेश्वरी को समर्पित है यहाँ का दशहरा। यह पर्व यहाँ 75 दिनों तक मनाया जाता है जो कि विश्व का सबसे अधिक दिनों तक चलने वाला एकमात्र पर्व है। दशहरे में माँ दंतेश्वरी के साथ अन्य कई देवी-देवताओं की भी पूजा की जाती है और आखिरी दिन पर्व में आमंत्रित किये गए सभी देवी-देवताओं को विदाई दी जाती है। रायगढ़ का तथा बिलासपुर का **राउतमढ़ई** ऐसे ही उत्सव हैं, जिनकी अपनी एक बहुत-ही विशिष्ट पहचान है। पंडवानी, भरथरी, पंथी नृत्य,करमा, दादरा, गैड़ी नृत्य, गौरा, धनकुल आदि की स्वर माधुरी भाव-भंगिमा तथा लय में ओज और उल्लास समाया हुआ है। छत्तीसगढ़ की शिल्पकला में परंपरा और आस्था का अद्भुत समन्वय विद्यमान है। यहाँ की पारंपरिक शिल्पकला में धातु, काष्ठ, बांस तथा मिट्टी एकाकार होकर अर्चना और अलंकरण के लिए विशेष रुप से लोकप्रिय हैं। संस्कृति विभाग ने कार्यक्रमों में पारंपरिक नृत्य, संगीत तथा शिल्पकला का संरक्षण और संवर्धन के साथ-साथ कलाकारों को अवसर भी प्रदान किये हैं।

भोजली पर्व

छत्तीसगढ़ का एक और प्रमुख पर्व है और वह है भोजली पर्व। भोजली दो शब्दों से मिलकर बना है भो-जली भो यानि भूमि और जली यानि जल मतलब भूमि में सदैव जल के होने की प्रार्थना हेतु मनाया जाने वाला पर्व।इस पर्व में महिलाएं प्रकृति देवी भोजली की प्रार्थना करते हुए गाती हैं-

पानी बिना मछरी, पवन बिना धाने।
सेवा बिना भोजली के तरसे पराने।

इस पर्व में गेंहू के पौधे को श्रवण शुक्ल नवमी को बोया जाता है और भादो की प्रथमा को नदी में विसर्जित किया जाता है। भोजली पर्व के बाद बचाये गए पौधों को एक दूसरे को देकर मितान अर्थात मित्र बनाने की परम्परा है। भोजली को कान में लगाकर जीवन भर दोस्ती निभाये रखने की कसमें खायी जाती हैं। पुरुष इस प्रथा के समय भोजली बोलते हैं और औरतें कहती हैं गियान। यह आदिवासियों का फ्रेंडशिप डे कहा जा सकता है जिसमे फ्रेंडशिप बेंड कलाई में न पहनकर कान में लटकाया जाता है। एक मान्यता यह भी है कि भोजली के दिन ही भगवान राम और केवट की मित्रता हुई थी और उसी मित्रता के सम्मान में यह पर्व मनाया जाता है।

ककसाड़ पर्व

ककसाड़ गोंड जनजाति का प्रमुख पर्व है। एक निश्चित परिधि में निवास करने वाले गोंड जनजाति के बाल,युवा,बुजुर्ग एवं महिलाएं एक नियत स्थान पर एकत्रित होते हैं। इसमें भी लोक देवी-देवताओं की पूजा अर्चना की जाती है। इस पर्व के लिए युवाओं में अत्यधिक उत्साह देखा जाता है। गायता, सिरहा, गुनिया, एवं गाँव के पुजारी इस पूजा को सम्पन्न कराते हैं। पूजा के उपरान्त लोक वाद्य यंत्रों यथा-मांदर, ढोल,नगाड़ा, तुड़मुड़ी, मोहरी इत्यादि की संगत पर नृत्य की अद्‌भुत प्रस्तुति शुरू हो जाती है।

सोहई पर्व

सोहई पर्व जनजातियों का गौ रक्षा पर्व है जिसमें राउतों द्वारा पशुओं की खुशहाली का अनुष्ठान किया जाता है। सोहई का अर्थ है सोहना अथार्थ जो वस्तु सुन्दर लगे उसे पशुओं को धारण करवाना। इस दिन राउत भी कौड़ियों एवं मोरपंख के आभूषण पहन,सर पर झाँगा पांग, माथे पर तिलक, आँखों में काजल, अंगरखे के ऊपर कौड़ियों से जड़ा जैकेट, हाथ में फरा और लाठा, पाँव में घुंघरू एवं पनही इतना श्रृंगार करके घर की औरतों से आरती करवा कर यह राउत सुबोधिनी एकादशी के दिन मालिकों के घर जाकर गाय बैलों के गले में सोहई बांधकर उनकी बढ़ोत्तरी की प्रार्थना करते हैं। सोहई पलाश के तने, मोरपंख,एवं कोड़ियों से तैयार हो जाती है। इसमें तने को खूब कूटकर ब्रश की तरह बना लेते हैं। उसे फिर चटख लाल या हरे रंग से रंग दिया जाता है। राउत प्रत्येक घर में प्रवेश करते हुए यह दोहा बोलते हैं-

उठे रहो मालिक, नव लगगे बासे
भीतर दुलरवा दूध पीये, बाहिर धुले रनवासे ।

इस अनुष्ठान के बाद ढोल की थाप पर राउत नृत्य करते हैं और प्रत्येक राउत बीच में थाप रुकवाकर अपना मौलिक दोहा बोलता है। इसे दोहा पारणा कहा जाता है। दोहा पारणे से पूर्व 'अररर हो' की ध्वनि के साथ थाप रूकती है। इस नृत्य में किसी को काछन चढ़ता है और वह प्रतिद्वंदी को ललकार उठता है। लाठी मारने, फरा झोंकने का प्रदर्शन अचंभित कर देने वाला होता है। तिस पर भी पीछे से आती वाद्य यंत्रों- ढोल, ढफ, टिमकी, मोहरी, गदम गुदुम इत्यादि बजते रहते हैं। कुल मिलाकर यह दृश्य दर्शकों के रोंगटे खड़े कर देने को पर्याप्त है।

छेरछेरा छत्तीसगढ़

छेरछेरा छत्तीसगढ़ का लोकपर्व है जो पौष पूर्णिमा को मनाया जाता है। धान की फसल पककर झूमने लगती है और अपने श्रम एवं त्याग को फलीभूत पाकर मन आह्लादित होता है- **पीस कूट के छेरछेरा मनाबो नाचे ल डंडा घरोघर जाबो।** परस्पर एकता एवं बंधुत्व, औदार्य, त्याग एवं समाजवादी भावना का सन्निवेश- छेरछेरा का मूल प्राण है। नवयुवक इस अवसर पर डंडा नृत्य करते हैं। यह सांस्कृतिक एवं सामाजिक एकता का संदेशवाहक पर्व है।

होली एवं तीज

छत्तीसगढ़ में उत्तर भारत की तरह ही होली एवं तीज भी बड़े ही हर्षोल्लास से मनाते हैं। देवारों में पोरा काफी महत्व है। अलबला तीजा नहीं मानते। सामान्यत: बहन को भाई जिस तरह अपने घर लाते हैं उस परंपरा की

बजाय बहन ससुराल में रहकर ही तीजा मानती हैं। वहीं व्रत-उपवास आदि होता है। लेकिन वस्त्रादि उपहार देने का कोई चलन नहीं है। पोरा में कुम्हारों से मिट्टी की कुछ वस्तुयें खरीदकर उसकी पूजा के बाद बलि दी जाती है। भादो के शुक्ल पक्ष में ठाकुर देव को भी ये लोग बड़ी आस्था से पूजते हैं और बलि के बाद प्रसाद बांटते हैं।

सकट

देवारों में सकट अत्यधिक महत्वपूर्ण पर्व है। सकट में महिलायें अपने माता-पिता के घर आती हैं। उपवास रखा जाता है। सामूहिक भोज से उपवास तोड़ा जाता है। परिजन वस्त्र एवं श्रृंगार सामग्रियां अपनी कन्या को देते हैं।

हरेली

हरेली यद्यपि खेतिहर समाज का पर्व है फिर भी इसके दूसरे स्वरुप यानी तंत्र मंत्र वाले हिस्से को देवारों का वर्ग मानता है। जिस तरह छत्तीसगढ़ के ग्राम्यांचलों में बुरी बलाओं को बाहर ही रखने के लिए नीम की पत्तियों को वलय की तरह इस्तेमाल करते हैं उसी तरह देवार भी नीम की डालियों का सहारा लेते हैं। सुअर डेरा के बाहर नीम की पत्तियां खोंसी जाती हैं। अपने सांगीतिक उपकरणों को भी हरेली पर पूजते हैं। लेकिन अब व्यापक तौर पर हरेली का उत्सव नहीं मनता।

ओड़िशा में नृत्य के विभिन्न रूप ताल, गठबंधन, भक्ति और इसकी अभिव्यक्ति को जोड़ती है ओडिसी। ओडिसी शास्त्रीय नृत्य का एक रूप है, जो नक्काशीदार चित्रों के भाव, अभिव्यक्ति और गीतात्मक गुणों को दर्शाता है। ओडिसी नृत्य दर्शकों को एक ऐसा अनुभव देता है जो शब्दों से परे है। यह नृत्य मन्दिर की नर्तकियों द्वारा अनुष्ठान के रूप में पेश किया जाता है। वे सुन्दर परिधानों एवं आभूषणों से अलंकृत होती हैं। लोक नृत्यों का मंचन आमतौर पर त्यौहारों के दौरान किया जाता है और विभिन्न प्रकार के रूपों जैसे डांडा नाता, (एक अनुष्ठान) नृत्य; चैतीघोडा, (एक पारंपरिक मछुआरे का नृत्य), पिका नृत्य, युद्ध नृत्य और छउ मुखौटे वाला नृत्य नाटक जो उड़ीसा के गौरवपूर्ण अतीत की याद दिलाता है। आदिवासी नृत्य जैसे प्रजा शादी के नृत्य और रंगीन गोंड नृत्य, छिद्रित पगड़ी में प्रदर्शन आकर्षक होते हैं।

नौखय पर्व

पश्चिमी ओड़िशा के लोगों के नए साल का पर्व होता है। यह चावल की फसल के होने के बाद मनाया जाता है। इस त्यौहार पर नए चावल का भोग सबसे पहले समलेश्वरी देवी को चढ़ाया जाता है, जिनके नाम पर संबलपुर का नाम रखा गया है। इसके बाद ही उस चावल का उपयोग खाने में किया जाता है।

बाली जतरा

नवंबर महीने में कार्तिक पूर्णिमा का पर्व मनाया जाता है। यह उत्सव बाली और सुमात्रा द्वीपों की गौरवपूर्ण व्यापारिक इतिहास को याद करने के लिए मनाया जाता है जिसमें कटक में महानदी के किनारे ओड़िशा के व्यापारी समुदाय के लोग इस उत्सव को पूरे उल्लास के साथ मनाते हैं। बाली यात्रा 10 से 12 दिनों की होती है, जिसमें ओडिशा की हस्तनिर्मित कलाकृतियां बेची जाती हैं।

धनु जतरा

इस यात्रा को भगवान कृष्ण की मथुरा यात्रा से जोड़कर देखा जाता है जब वे ओड़िशा के पश्चिम में स्थित बाढ़गढ़ जिले में धनुष कार्यक्रम को देखने के लिए पहुंचे थे। इस उत्सव के दौरान कई पौराणिक क्रियाओं को प्रस्तुत किया जाता है।

चैत्र पर्व

ओड़िशा में कोरापुत और भुंइया जनजाति का यह प्रसिद्ध त्यौहार है। पूरे चैत्र महीने ये जनजातियां मौज मस्ती और धमाल के मूड में रहती हैं। पुरुष तड़के ही शिकार पर निकल जाते हैं और जो भी जानवर उन्हें पहले दिख जाए चाहे वो भेड़िया ही क्यों न हो उसका शिकार कर लाते हैं और अपने समुदाय में मिल बाँट कर खाते हैं। पूरी रात स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी गायन, नृत्य, नशे और मांसाहार में व्यस्त रहते हैं। इस महीने नित्य ही समुदाय

अपने आराध्य को पशु की बलि देता है।

सुमी गेलिरक

यह कोरापुत की बोन्डा जनजाति का त्यौहार है। यह जनजाति रोचक इसलिए है क्योंकि यह दुर्गम ऊँचे पहाड़ों पर निवास करती है और बाहर की दुनिया से इसका संपर्क न के बराबर ही होता है। पूरे वर्ष युवक युवतियां इस पर्व का इन्तजार करते हैं क्योंकि इसमें उन्हें मनपसंद जीवन साथी चुनने की आजादी मिलती है। गाँव का पुजारी सीसा गाँव के देवों को शराब और पशु अर्पित करता है। इसमें एक रोचक परम्परा का भी निर्वाह होता है जो क्रम से बालक, नवयुवक और बूढ़ों द्वारा पूरी की जाती है। इसमें सबसे पहले बालकों के कई समूह बनाये जाते हैं। हर समूह ढोल की थाप पर टहनियों से एक दूसरे पर वार करते हैं। जब चोट ज्यादा गहरी होती है तो ढोल रुकवा दिया जाता है और सीसा बालकों को केक जैसा मिठाई देता है। यह परम्परा आपसी सहयोग, समूह में कार्य और मतभेद सुलझाने की सीख देती है। बालकों के बाद युवजन और अंत में वृद्ध यह खेल खेलते हैं। अंत में सभी एक दूसरे को गले लगाकर व पैर छूकर माफी मांगते हैं।

बीजा पाण्डु पर्व

यह पर्व चैत्र पर्व की भांति कोरापुत इलाके की कोय जनजाति का प्रसिद्ध पर्व है। इसमें पुरुष गुडिमाता पर अर्पित करने के लिए सुबह से ही पशु की खोज में निकल जाते हैं और अँधेरा होने से पूर्व लौट आते हैं। तब तक उनकी स्त्रियाँ नृत्य करते हुए उनका इन्तजार करती हैं। पुरुष सर पर सींगों वाली टोपी पहनते हैं और स्त्रियां हाथ में पीतल की छड़ी (जिसमें सुन्दर घंटियां लगी रहती हैं) को बजाती हैं। इनके सर पर भी पीतल की टोपी सजी रहती है। इनके ढोल बड़े एवं बेलनाकार होते हैं और यह प्रेम गीतों का गायन करते हैं।

कडु पर्व

गंजाम और कोरापुट इलाकों की कोंध जनजाति का यह प्रसिद्ध पर्व है। यह प्रत्येक वर्ष स्लैग अलग स्थानों पर निर्धारित तिथि को शुरू होता है। पांच दिन चलने वाले इस पर्व में पहले मनुष्य की बलि दी जाती थी जिसे ब्रिटिश शासनकाल में प्रतिबंधित कर दिया गया। इस प्रथा को मेरिया कहा जाता था जिसका स्थान अब भैंसे की बलि ने ले लिया है। यह पशु बलि पर्व के तीसरे या चौथे दिन दी जाती है। इनका बलि देने का तरीका बेहद ही खौफनाक होता है। पशु को बांधकर उसके इर्द गिर्द ढोल की थाप पर खूब नृत्य करते हुए धीमे धीमे उसके अंग काटे जाते हैं फिर उसके खून और मांस को हल्दी के खेत में बिखरा दिया जाता है। इसके पीछे मान्यता है कि उनकी हल्दी बलि के मांस की तरह भरी-भरी और खून की तरह चटख होगी।

माघे परव

हो,ओरायन, किसान एवं कौल जनजाति का यह प्रमुख पर्व है जो उनकी फसल को समर्पित है। यह पर्व भी प्रत्येक वर्ष विभिन्न स्थानों पर मनाया जाता है। इसमें गाँव की कुलदेवी को पशु बलि समर्पित की जाती है तथा महुआ नामक शराब भी चढ़ाई जाती है। मान्यता है कि ऐसा करने की वजह से कुलदेवी उनपर शांति और धन-धान्य की वर्षा करेगी। सभी स्त्री पुरुष बच्चे रंग बिरंगे परिधानों में खूब नृत्य एवं गीत की प्रस्तुति देते हैं।

बोइता बंदना

ओड़िशा के अनेक अपने पारंपरिक त्योहार हैं। इसका एक अनोखा त्योहार अक्टूबर या नवंबर (तिथि हिंदू पंचांग के अनुसार तय की जाती है) में मनाया जाने वाला बोइता बंदना (नौकाओं की पूजा) अनुष्ठान है। पूर्णिमा से पहले लगातार पांच दिनों तक लोग नदी किनारों या समुद्र तटों पर एकत्र होते हैं और छोटे-छोटे नौका तैराते हैं।

सरहुल पर्व

सरहुल चैत्र महीने के पांचवे दिन मनाया जाता है। इसकी तैयारी सप्ताह भर पहले ही शुरू हो जाती है। प्रत्येक परिवार से हंडिया बनाने के लिए चावल जमा किए जाते

हैं। पर्व के पूर्व संध्या से पर्व के अंत तक पहान उपवास करता है। एक सप्ताह पूर्वसूचना के अनुसार पूर्व संध्या गाँव की डाड़ी साफ की जाती है। उसमें ताजा डालियाँ डाल दी जाती हैं जिससे पक्षी और जानवर भी वहाँ से जल न पी सके। पर्व के दिन प्रात: मुर्गा के बांग देने के पहले ही पूजार दो नये घड़ों में डाड़ी का विशुद्ध जल भर कर चुपचाप सबकी नजरों से बचाकर गाँव की रक्षक आत्मा सरना बुढ़िया के चरणों में रखता है। उसी दिन गाँव के नवयुवक चूजे पकड़ने जाते हैं। चेंगनों के रंग आत्माओं के अनुसार अलग-अलग होते है। किसी-किसी गाँव में पहान और पूजार ही पूजा के इन चूजों को जमा करने के लिए प्रत्येक परिवारों में जाते हैं। दोपहर के समय पहान और पूजार गाँव की डाड़ी झरिया अथवा निकट के नदी में स्नान करते हैं। किसी-किसी गाँव में पहान और उसकी पत्नी को एक साथ बैठाया जाता है। गाँव का मुखिया अथवा सरपंच उन पर सिंदूर लगाता है। उसके बाद उन पर कई घड़े पानी डाला जाता है। उस समय सब लोग ''बरसो, बरसो'' कहकर चिल्लाते हैं। यह धरती और आकाश के बीच शादी का प्रतीक है।

मड़ाई पर्व

कार्तिक अमावस्या यानी दीपावली के अगले दिन से ही मढ़ई-मेला का सिलसिला शुरू हो जाता है पूर्णिमा तक चलता है। मुख्य रूप से गोंड आदिवासी इसे बड़ी धूमधाम से मनाते हैं। गजेटियर के अनुसार गांगो तेलिन की याद में यह त्यौहार मनाया जाता है। वह एक बड़ी जादूगरनी थी। यहां गांगो की पूजा करने वाले बिसराम का कहना है कि ढाल देवी का प्रतीक है। यहां हम गांगो की पूजा करते हैं। हमारे ज्यादातर तीज-त्यौहार कृषि से जुड़े हुए हैं। मढ़ई का भी इससे जुड़ाव है। जब धान की नई फसल आ जाती है और उनके घरों में अनाज आ जाता है तब वे खुशियां मनाते हैं। यह समृद्धि और खुशहाली का मौका होता है। दीपावली खुशियां बांटने का त्यौहार है।

छत्तीसगढ़ में पोला मूलत: खेती-किसानी से जुड़ा त्यौहार है। अगस्त महीने में खेती का काम समाप्त हो जाने के बाद भाद्र पक्ष की अमावस्या को यह त्यौहार मनाया जाता है। पोला त्यौहार मनाने के बारे में ऐसा कहा जाता है कि चूंकि इसी दिन अन्नमाता गर्भ धारण करती है अर्थात् धान के पौधों में इस दिन दूध भरता है, इसीलिए यह त्यौहार मनाया जाता है। इस दिन लोगों को खेत जाने की मनाही होती है।

भगोरिया पर्व

किंवदंती के अनुसार शिवपुराण में भी भगोरिया का उल्लेख आता है। जिसके अनुसार भव एवं गौरी शब्द का अपभ्रंश भगोरिया के रूप में सामने आया है। भव का अर्थ होता है शिव और गौरी का अर्थ पार्वती होता है। दोनों के एकाकार होने को ही भवगौरी अर्थात भगोरिया कहा जाता है। फागुन माह के प्रारंभ में जब शिव और गौरी एकाकार हो जाते हैं तो उसे भवगौरी कहा जाता है और यही शब्द बाद में अपभ्रंश होकर भगोरिया के नाम से प्रचलित हुआ है। भगोरिया का वास्तविक आधार देखें तो पता चलता है कि इस समय तक फसलें पक चुकी होती हैं तथा किसान अपनी फसलों के पकने की खुशी में अपना स्नेह व्यक्त करने के लिये भगोरिया हाट में आते हैं। भगोरिया हाट में झूले, चकरी, पान, मिठाई सहित श्रृंगार की सामग्रियाँ, कपड़े गहनों आदि की दुकानें भी लगती हैं।

बूका भाओना पर्व

जोरहाट में बूका भाओना पर्व में मिट्टी में लोग लोट-लोट कर ईश्वर की प्रार्थना करते हैं।

नौखाई पर्व

असम के तिनसुकिया में उड़िया नौखाई पर्व मनाते हैं। यह पर्व भी फसल को समर्पित एवं चावल की शराब को अर्पित रहता है।

पोला त्योहार

इस त्यौहार के पीछे मान्यता है कि अन्नपूर्णा देवी धान के खेतों पर अपनी कृपा बरसाती है और उनमें दूध भरती है। नागपुर में पोला त्योहार के दौरान पेली-काली मारबात रस्म करते हैं। इस पूजन के बाद माताएं अपने पुत्रों से पहले अतिथि कौन? इस तरह पूछती हैं और इस दौरान पुत्र अपना नाम माता को बताएंगे, उसके बाद ही पूरणपोली और खीर का प्रसाद ग्रहण करते हैं। महाराष्ट्र और छत्तीसगढ़ में मनाया जाने वाले इस लोक पर्व का यह नजारा देखने में बहुत ही खूबसूरत दिखाई देता है।

सुंग्रेमोंग पर्व

नागालैंड के दीमापुर में नागा आदिवासी सुंग्रेमोंग त्यौहार मनाते हैं, जिसमें विभिन्न प्रकार के नृत्य प्रस्तुत किये जाते हैं, जो अद्‌भुत होते हैं।

बाइखो पर्व

गुवाहाटी में राभा जनजातियों द्वारा बाईखो पर्व मनाया जाता है। यह समुदाय की समृद्धि के लिए मनाया जाता है।

करबी दोमाही पर्व

गुवाहाटी में करबी दोमाही पर्व के उपलक्ष्य में खतरनाक नृत्य प्रस्तुत किया जाता है।

दियोधनी पर्व

गुवाहाटी में मनाया जाने वाला दियोधनी पर्व के दौरान दियोधनी नृत्य किया जाता है। कामाख्या मंदिर में इसका काफी रंगारंग कार्यक्रम होता है।

मंडा पर्व

रांची में मंडा पर्व के उपलक्ष्य में मंदिर के सामने लेट कर प्रार्थना की जाती है।

सोहारीया पर्वसोह

इस पर्व को मनाने के पीछे भी एक बहुत ही रोचक कथा है- लोक मान्यता है, ठाकरान(आदिदेवी) की हंसली ही (गले की ही) के मैल से बने हांस-हांसिल (हंस-हंसिनी) पक्षियों ने विशाल जल-राशि पर तैरते हुए बिरना (खस घास) के झाड़ में अपना घोंसला बनाया था जहां हांसिल (हंसिनी) ने दो अंडे दिए थे, जिनसे दो मानव शिशु उत्पन्न हुए थे। तब ठाकुर जिउ (सृष्टिकर्ता) को चिंता हुई कि उन दोनों मानव -शिशुओं के आहार की व्यवस्था की जाए। उस समय स्वर्गपुरी में आइनी-बाइनी कपिला गाएं थीं। ठाकुर जिउ ने मारांग बुरू (महादेव) को अपने पास बुलाकर कहा कि उन गौओं को पृथ्वी पर ले जाएं। मारांग बुरू स्वर्ग पुरी में ही रहते थे परंतु वे पृथ्वी पर तोड़े सुताम (काल्पनिक तंतु) के सहारे आसानी से आ-जा सकते थे। ठाकुर जिउ के आदेशानुसार मारांग बुरू बहुत अनुनय-विनय करके नर-मादा आइनी-बाइनी कपिला गौओं को पृथ्वी पर ले आए और उन्हें जंगल में रखा। साथ ही, पृथ्वी पर मारांग बुरू ने मड़ुआ,सावां आदि कुछ मोटे अनाजों के बीज जहां-तहां छींट दिए। कालक्रम में प्रथम मानव -दंपत्ति, पिलचू हाड़ाम-पिलचू बूढ़ी तथा कपिला गौओं की वंश-वृद्धि हो गई। मानव-संतानें बाकुक नाहेल (हाथों से चलाने वाले हल) से जमीन जोतकर अनाज उपजाना सीख चुकी थीं। उस पर मारांग बुरू ने उन लोगों से कहा, अपने हाथों से कब तक हल जोतते रहोगे ? जाओ, जंगल से नर-मादा कपिला गौओं को ले आओ। उनमें से नर-गौओं(बैलों) से हल चलाया करना और मादा-गौओं(गायों) के दूध खाया-पीया करना।

दक्षिण की जनजातियों के निम्न पर्व हैं -

चितरई पर्व

मदुरै में चितरई पर्व पर भगवान कालाज़ार की प्रतिमा के समक्ष लोग नहाते हैं। कई बार पानी इतना गंदा हो जाता है कि बीमारियां लगने की आशंका बढ़ जाती है।

जालीकट्टू पर्व

मदुरै में जालीकट्टू पर्व के दौरान कुछ युवक बैल के साथ भिड़ते हैं। यह काफी खतरनाक और जानलेवा होता है।

वलयानाद देवी मंदिर पर्व

केरल कोल्लम जिले के कोट्टनकुलंगरा श्रीदेवी मंदिर में देवी मां की पूजा की परम्परा वर्षों से चली आ रही है। यहां हर साल इस मंदिर में एक उत्सव का आयोजन

होता है। इस मंदिर में पूजा करने से पहले पुरुषों को भी महिलाओं की तरह सोलह श्रृंगार करना आवश्यक होता है। यहां तक कि महिलाओं का रूप धारण करने का मतलब सिर्फ कपड़े बदलना ही नहीं है, बल्कि उन्हें महिलाओं की तरह पूरे सोलह श्रृंगार करने के बाद ही इस मंदिर में प्रवेश मिलता है।

ल्हूटी पूर्णिमा पर्व

नेपाली हिंदुओं द्वारा मनाए जाने वाला ल्हूटी पूर्णिमा पर्व लोग 'बालाजु बैसे धरा' का पानी खुद पर छींटते हैं।

चुंथुनी त्यौहार

मणिपुर में चुंथुनी त्योहार के मौके पर भाला नृत्य किया जाता है, जो बेहद खतरनाक होता है।

तुलूनी पर्व

दीमापुर में तुलूनी पर्व त्यौहार अच्छी फसल के लिए किया जाता है ।इसमें मेढकों के ब्याह रचाने की परम्परा है। उनकी आस्था है कि ऐसा करने से बारिश अच्छी होगी जिससे उनकी फसल खूब धन धान्य प्रदान करेगी। इसे अनि उत्सव भी कहा जाता है जिसमे मांस खाने की प्रतियोगिता जैसी विचित्र प्रतियोगिता भी आयोजित की जाती हैं। तुलुनी का स्थानीय भाषा में अर्थ है चावल, पर्व के दौरान ग्राम देवता लित्सावा को पत्ते पर चावल का पिंड एवं चावल की ही शराब अर्पित की जाती है।

अंबूबच्ची पर्व

विश्व के सभी तांत्रिकों, मांत्रिकों एवं सिद्ध-पुरुषों के लिये वर्ष में एक बार पड़ने वाला अम्बूवाची योग पर्व वस्तुतः एक वरदान है। यह अम्बूवाची पर्वत भगवती (सती) का रजस्वला पर्व होता है। पौराणिक शास्त्रों के अनुसार सतयुग में यह पर्व 16 वर्ष में एक बार, द्वापर में 12 वर्ष में एक बार, त्रेता युग में 7 वर्ष में एक बार तथा कलिकाल में प्रत्येक वर्ष जून माह में तिथि के अनुसार मनाया जाता है।

गंजन त्यौहार

अगरतला में शिवा गंजन त्यौहार के मौके पर पशुओं की बलि दिए जाने की परम्परा है,इस त्यौहार पर मांस मदिरा का सेवन कर स्त्री पुरुष खूब गीत एवं नृत्य प्रस्तुत करते हैं ।

माओत्सु पर्व

एओ नागा समुदाय का प्रमुख त्यौहार 'माओत्सु' नागालैंड में धूमधाम से तीन दिन तक मनाया जाता है। दीमापुर में इस दिन से क्षेत्र पर आधारित फसल की बुआई कर विश्राम करने के रूप में मनाया जाता है। एओ नागा समुदाय नागालैंड के प्रमुख जनजातियों में से एक है। समारोह में एओ लोगों ने लोक कथाओं के आधार पर कई पारंपरिक लोक गीत, नृत्य और लघु नाटक का आयोजन किया जाता है।

खारची पर्व

खारची से तात्पर्य है धरती। इस पर्व के दौरान मातृत्व की पूजा की जाती है, क्योंकि धरती माँ को ही सृजन का मूल माना जाता है। इस पूजा में बकरों और कबूतरों की भी बलि चढ़ाई जाती है।

यह अपने आप में ऐसा अनोखा पर्व है जिसमें देवताओं के सिर की ही पूजा होती है। इतना ही नहीं केवल इस त्यौहार में ही साल भर बंद रहने वाली पुरानी हवेली के मंदिर के दरवाजे भी खोले जाते हैं।

मनसा पर्व

उत्तरी भारत की कुछ जनजातियां कुलदेवी मनसा को प्रसन्न करने के लिए अपने शरीर पर कई स्थानों पर छिद्र करवाती हैं। मान्यता है कि ऐसा करने से माता का प्रकोप समझी जाने वाली बीमारी **चेचक** से बचा जा सकता है।

मोधेरा एवं तरनेतार पर्व

गुजरात की जनजातियों के दो प्रसिद्ध पर्व हैं- मोधेरा और तारनेतार पर्व। तारनेतार मेला स्वयंवर की तरह होता है जहाँ पुरुष सज धज कर आकर्षक छतरियों के साथ आते हैं और स्त्रियां अपनी पसंद के पुरुष का चुनाव करती हैं। ❑

मध्यभारत के जनजातीय पर्व एवं त्यौहार

- जगदेवराम उरांव, अध्यक्ष अ.भा.कल्याण आश्रम

सुदूर वन पर्वतों, घने जंगलों, गिरि कन्दराओं में रहने वाले वनवासी जब अपने अस्तित्व की सुरक्षा के संबंध में विचार करते हैं तब उन्हें अपने ऊपर हो रहे सामाजिक, सांस्कृतिक,आर्थिक शोषण आक्रमण और प्रदूषण से बचने के लिए एक ही सहारा दिखाई देता है- उनकी अपनी विशिष्ट संस्कृति। संस्कृति ही उनकी पहचान एवं अस्मिता को सुरक्षित रख सकती है। **संस्कृति को सुरक्षित रखने में उत्सवों का महत्वपूर्ण स्थान है।** उत्सवों के माध्यम से ही वनवासियों के सांस्कृतिक धरातल पर पहुँचकर आध्यात्मिक स्वरूपों तथा सही संवेदनाओं की पहचान होती है।

मध्यप्रदेश के पूर्वी अंचल जिसमें रायगढ़ सरगुजा एवं बिलासपुर जिले आते हैं, जो एक ओर बिहार और ओड़िशा के वनवासी अंचल से जुड़े हुए हैं दूसरी ओर उत्तरप्रदेश के वनवासी बहुल जिला मिर्जापुर से सटा हुआ है। इस अंचल में मुख्य रूप से गोंड, कवर, उरांव, मुण्डा, खड़िया, नगेसिया, करेवा, बैगा आदि जनजातियाँ रहती हैं। सभी जनजातियों में उत्सव प्राय: सर्व सामान्य रूप से मनाये जाते हैं।

माघ या छेरता परब

माघ मास के कृष्ण पक्ष चतुर्थी को माघ या छेरता परब मनाया जाता है। उरांव इसे माघे परब कहते हें। इसे नूतन वर्ष के प्रारंभ के रूप में मनाया जाता है। उरांव जाति में प्रचलित धार्मिक कथा के अनुसार एक बार धर्मेश (महादेव) एक लड़के का रूप लेकर धरती पर आये उनके पूरे शरीर में फोड़ा फुंसी भरी हुई थी। वे लोगों के पास धांगर (नौकर) रहने के लिए गये पर किसी ने भी धांगर के रूप में नहीं रखा। वे अन्त में एक विधवा वृद्धा 'चाला पच्चों' (स्वयं पार्वती वृद्धा का रूप धारण करके आई थी।) के पास धांगर रह गए। वृद्धा के घर को अन्न-धन से भर दिया। एक साल पूरा हो जाने पर उस लड़के ने विधवा वृद्धा के घर से धांगर का काम छोड़ दिया। जिस दिन उसने धांगर का काम छोड़ दिया उस दिन माघ मास की कृष्ण पक्ष चतुर्थी थी। उसी दिन की याद में माघ त्यौहार मनाया जाता है। साल भर का हिसाब-किताब लेना देना पूरा कर लिया जाता है। नये धांगर काम पर लगते हैं या आगे के साल तक रहने के लिए पुन: काम में लग जाते हैं।

माघ परब के दिन बालक एवं युवक लकड़ी लाने के लिए जंगल में जाते हैं। कुछ लोग मछली मारने के लिए नदी की ओर जाते हैं। जंगल से लकड़ी लेकर वापस आते समय लड़के मौज मस्ती के गीत और नारे लगाते हुए आते हैं। घर में चावल की विभिन्न प्रकार की रोटियाँ पकाई जाती हैं। विशेष रूप से बड़ी और खटाई डालकर मछली पकाई जाती है। जिसे 'डुबकी' कहा जाता है। रात्रि में घर के देवी-देवताओं की पूजा की जाती है पितरों को चढ़ाया हुआ भोग माघ के दिन लाई हुई लकड़ी के गट्ठर में रख दिया जाता है जिसे दूसरे दिन गांव के लड़के एकत्रित होकर गांव के बाहर नदी या डाड़ी के पास जाकर मुँह आदि धोकर खाते हैं। वहाँ से वापस आने के बाद लड़के घर-घर जाकर गीत गाते हुए गुण्डा (चावल का आटा) मांगते हैं। चावल के आटे को एक दूसरे पर रंगते हैं। हँसी मजाक करते हैं। वहीं पर कुछ लड़कों के शरीर के ऊपर पुवाल लपेटकर भालू जैसा बना दिया जाता है। कुछ लड़कों के शरीर में चावल के गीले आटा से रंग पोतकर बाघ जैसा बनाया जाता है। इस तरह से हँसी-मजाक करते हैं। फिर घर-घर जाकर चावल की रोटी मांगते हैं। मैदान में एकत्रित होते हैं।

तीरंदाजी, कबड्डी, हॉकी आदि की प्रतियोगिता होती है। इस प्रकार नव वर्ष शुभारंभ की खुशी में युवक मौज मस्ती करते हैं।

फागुन

फागुन मास की पूर्णिमा को होली के अवसर पर फागुन का त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार शिकार खेलने का होता है। फागुन के तीन दिन पूर्व से गांव के सभी लड़के शिकार खेलने जाते हैं। उस दिन प्रात: लड़के गांव के बाहर किसी पेड़ के नीचे चण्डी देवी की पूजा के लिए एकत्रित होते हैं। जिसे **'सिकेरिया देव'** के नाम से पुकारते हैं। पेड़ में चण्डी देवी की मूर्ति रहती है। जिसे पेड़ के खोखले में छिपाकर रखते हैं। फागुन के दिन उसे बाहर निकालकर उसको पानी तथा दूध से नहलाकर सिन्दूर के टीका लगाते हैं। जंगल से एक शाल के पेड़ की डाली तोड़कर लाई जाती है। उसके एक छोर में धूप बांधी जाती है। दूसरे छोर को किसी एक लड़के को पकड़ाकर मंत्र पढ़ा जाता है। वहीं युवक मंत्र के प्रभाव से सबको काम लिए नियुक्त करता है जैसे शिकार को कौन मारेगा, कौन ढोयेगा, कौन घेराबंदी करेगा आदि काम बताता है। दोपहर सभी लड़के शिकार खेलने जंगल जाते हैं। संध्याकाल वापस आते समय सेमर के वृक्ष को काटकर लाते हैं। सेमर का वृक्ष गांव के बाहर में मैदान में गाड़ दिया जाता है। उस पर पुवाल, लकड़ी आदि इकट्ठी की जाती है। गांव के कूड़ा-करकट को उस पर डाला जाता है। रात्रि गांव का बैगा मुर्गी का अण्डा और मुर्गी के बच्चे को लेकर आता है तथा पूजा करता है। फागुन पर आग लगाई जाती है। सब लोग उस पर पत्थर मारते हैं। दैहिक, दैविक कष्टों को आग में जलाने के लिए प्रार्थना करते हैं। गांव में फागुन को काटकर गिराया जाता है। काटने वाला लड़का फागुन के एक डाली के छोर को उपर से काटकर दौड़ते हुए गांव की ओर भागता है तथा उसे किसी के छप्पर में छिपा देता है। सब लोग गांव के आखरा में आकर सरहुल खेलते हैं। इसी दिन से सरहुल खेलना प्रारंभ करते हैं। रात्रि सबके सोने के बाद 2-3 लड़के मिलकर फागुन की लकड़ी को लेकर जहां फागुन जलाई गई है वहाँ जाकर मुर्गी के अण्डे को ढूंढ़ते हैं। उसे लेकर डाड़ी या नदी पर जाकर सिकरिया देव या चण्डी देवी की पूजा करते हैं। गांव की सुख शान्ति के लिए तथा पहाड़ आदि पर चढ़ने में कोई विघ्न बाधा न आए इसलिए यह पूजा की जाती है। दूसरे दिन सबेरे से ही जी भरकर एक दूसरे पर रंग डालकर होली खेलते हैं। सरहुल नाचते हैं। गांव में टेसू के फूलों को पानी में उबालकर रंग बनाया जाता है।

सरहुल या खद्दी परब

सरहुल त्यौहार चैत्र मास में मनाया जाता है। इस त्यौहार के लिए निश्चित तिथि नहीं होती है। हरेक गांव के लोग अलग-अलग दिन त्यौहार मनाते हैं। सरहुल के दिन 'सरना' पूजा की जाती है। **गांव के बाहर शाल वृक्षों के झुण्ड को जहां पर ग्राम देवी-देवता रहते हैं 'सरना' कहते हैं। सरना में महादेव, पार्वती, धरती, और सूर्य देवता की पूजा की जाती है।** वनवासियों में महादेव को संसार को बनाने और बिगाड़ने वाले देवता के रूप में माना जाता है। प्रचलित कथा के अनुसार भगवान ने पूरी पृथ्वी को अग्नि प्रलय से समाप्त कर दी उस समय एक ही जोड़ा बचा था। उन्हीं से आगे की सृष्टि बढ़ती गई। प्रथम पुत्र के पैदा होने से खुशी मनाई गई, पुत्र का नाम सरहुल रखा गया। उरांव भाषा में पुत्र को 'खद्द' कहते हैं। खद्द से खद्दी परब हो गया तथा सरहूल नाम से सरहूल परब हो गया। इस अवसर पर शाल वृक्ष के झुण्ड में धर्मेश (महादेव) और चाला आयों (पार्वती) की पूजा की जाती है। इस त्यौहार को धरती मां और सूर्य भगवान के विवाह उत्सव के रूप में भी मनाया जाता है। इस त्यौहार के बाद प्रकृति अपना रूप बदलती है। सूर्य की गर्मी बढ़ती है, धरती तपती है जिसके कारण वर्षा होती है। नई सृष्टि प्रारंभ होती है, हरियाली छा जाती है। प्रकृति पूजा का साकार रूप ही सरहुल परब

या सरना पूजा है। सरहुल के परब की प्रतीक्षा कई दिनों से होती रहती है। सभी विवाहित लड़कियों को नैहर बुलाया जाता है। सरहुल के दिन सबेरे ही गांव के बीच नृत्य स्थान जिसे आखरा कहते हैं वहाँ बड़े-बड़े सफेद झण्डे फहराये जाते हैं। झण्डों पर द्वितीया चन्द्रमा के बीच सूर्य लाल कपड़ों से तथा कुछ झण्डों में लाल कपड़ों से हनुमान जी के चित्र बनाए हुए होते हैं। सरहुल के दिन गांव का पुजारी जिसे 'बैगा' या उरांव में 'नेगस' कहते हैं, उपवास करता है। प्रात: बैगा के स्नान आदि करके आने पर उसके शरीर पर खूब तेल लगा दिया जाता है। गांव के बड़े बूढ़े बैगा के साथ सफेद चितकबरा मुर्गा लेकर सरना के पास पूजा के लिए जाते हैं।

गांव में उत्सव होने पर आस-पास के गांव के सभी युवक-युवतियों को निमंत्रण दिया जाता है। गांव के लड़के-लड़कियां आपसी प्रेम और सौहार्द्र के प्रतीक के रूप में झण्डे लेकर सायं काल सरहूल नाचने के लिए आते हैं। रात्रि हरेक घर में शाल वृक्ष के फूल की पूजा होती है। चावल की रोटी पकाई जाती है। खा पीकर लड़के-लड़कियां रात भर सरहूल नाचते हैं। नृत्य में लड़के-लड़कियां एक दूसरे का हाथ पकड़कर नाचते हैं। नाच में गीत गाने के लिए दो समूह बनाते हैं। एक समूह पहले गीत गाते हुए नाचता है। दूसरा समूह उसके बाद गाते हुए नाचता है। गीत भौतिक, सांसारिक दु:ख सुख आदि से संबंधित होते हैं तथा कुछ गीत इतिहास से संबंधित होते हैं। रात भर नृत्य चलता है। प्रात: सभी लड़के-लड़कियां नए कपड़े पहनकर तथा श्रृंगार करके नाचने आते हैं। प्रात: के नृत्य का दृश्य मनोहर होता है।

टुन्चा या धुड़िया परब

यह परब बैसाख या जेठ माह में होता है। सर्व साधारण इसे टुन्चा कहते हैं। उरांव में इसे धुड़िया जतरा या टुन्चा कहते हैं। इस परब का संबंध बीज बोने से है। त्यौहार के दिन घर का प्रमुख व्यक्ति प्रात: जल्दी से उठकर अंधेरे में ही बीज बोने के लिए खेत में चला जाता है। थोड़े से स्थान पर बीज बोकर वापस आ जाता है। यह ध्यान दिया जाता है कि आते-जाते समय दूसरा व्यक्ति देख न पाये। सबेरे हल और बैल लेकर जोत लिया जाता है। दोपहर लड़के-लड़कियां गांव के बाहर किसी पेड़ के नीचे धुड़िया नृत्य करते हैं। धुड़िया नृत्य करमा नृत्य के समान ही होता है पर गीत का लय और मांदर बजाने का ताल अलग होता है। सायं सभी लड़के-लड़कियां साफ सुथरे कपड़े तथा श्रृंगार आदि करके टुन्चा नाचने के लिए आते हैं। टुन्चा नृत्य सरहूल या खद्दी नृत्य के समान ही होता है। पर गीतों की लय अलग होती है। उरांव जाति के अतिरिक्त अन्य जाति के लोग जिन्हें 'सदान' कहते हैं इस अवसर पर 'जदिरा' नृत्य करते हैं। यह इस अवसर का भिन्न नृत्य होता है। नृत्य आधी रात तक चलता रहता है।

बुढ़िया करम

बुढ़िया करम यह परब आषाढ़ माह में किसी भी दिन मनाया जाता है। इसे प्रति वर्ष नहीं मनाया जाता है। वर्षा होने की स्थिति में वृद्धा माताएं उपवास करती हैं। प्रात: सभी महिलायें लोटे में दूध लेकर गांव की पुजारिन जिसे बैंगिन कहते हैं, उसके साथ गांव के बाहर पीपल वृक्ष की पूजा करती हैं। पीपल वृक्ष पर दूध चढ़ाती हैं तथा वर्षा होने के लिए प्रार्थना करती हैं। वहां से वापस आकर कम से कम 5 गांव में जाकर प्रत्येक गांव में कम से कम 5 घरों से भिक्षा लाती हैं। सन्ध्या वापस आकर करमा नृत्य करती हैं।

नया खानी

नया खानी नव अन्न ग्रहण का त्यौहार है। यह दो प्रकार से मनाया जाता है। मैदानी खेत जिसे डाड़ कहा जाता है। उसमें पैदा होने वाला कटा अन्न, जिसे गोंदली या कटकी कहते हैं। गोंदली को पीसकर आटे में गुड़ मिलाकर सत्तू बनाया जाता है। घर के देवी-देवताओं को प्रसाद के रूप में चढ़ाया जाता है। सत्तू चाव से खाया जाता है। घर में आये अतिथियों के लिए गोंदली की आटा संदेश के रुप में दी जाती है।

दूसरी नया खानी जिसे उरांव में 'तुसगो' कहते हैं। मैदानी खेत में बोया जाने वाला धान गोड़ा या भाया के पकने पर भाद्रपद मास में मनाया जाता है। त्यौहार के दिन नये धान की पूजा की जाती है। चावल के आटे से रोटी पकाई जाती है। प्रसाद चढ़ाकर धान की बाली को भूनकर ओखली में कूटकर चिवड़ा बनाया जाता है। प्रसाद के रूप में चिवड़ा को दिया जाता है वन तुलसी की पत्ती कानों पर लगाई जाती है। इस त्यौहार में दही चिवड़ा खूब खाया जाता है। सन्ध्या काल लड़के-लड़कियां आखरा में करमा नृत्य करते हैं।

सोहरई या दिवाली

दीपावली देवी लक्ष्मी का पर्व है परन्तु वनवासी इसे विशिष्ट दृष्टिकोण से मनाते हैं। सोहराई उनके लिए गौ पूजा का पर्व है, गौ ही उनकी लक्ष्मी है। प्रचलित कथा के अनुसार भगवान ने सभी जानवरों को मानवों की सेवा करने के लिए आदेश दिया। सभी जानवर भगवान के आदेशानुसार मानवों की सेवा में लग गये। सूअर को कोई काम नहीं सूझा वह अपनी बुद्धि से खेत में हल जोतने के लिए और अपने नथूनों से खेत कोड़ने लगा। बहुत देर के बाद भी वह कुछ ही स्थान को कोड़ पाया इस पर गाय ने अपने बछड़े को भेजकर हल जोतने के लिए कहा थोड़े ही समय में बछड़े ने बहुत दूर तक खेत की जोताई कर दी। मानवों की सेवा में गाय की जीत हो गई। भगवान ने गाय से कहा तुम मानवों की सेवा करोगी इसलिए सबसे ज्यादा ताकत तुम्हीं को दूंगा। तुम निश्चित समय पर मेरे घर पर आना और घंटी बजा देना, मैं ऊपर से तुम्हारे लिए ताकत गिरा दूंगा। यह बात शेर ने सुन ली। वह जल्दी ही भगवान के दरबार पर पहुंचा और घंटी बजा दी। घंटी सुनकर भगवान ने ताकत गिरा दी जिसे खाकर शेर वहां से चला गया। गाय बाद में पहुँची, उसे देखकर भगवान ने कहा कि तुम तो ताकत ले गई हो, वापस क्यों आई हो ? तब गाय ने सारी बात बताई और तभी से शेर ताकतवर जानवर हो गया। लक्ष्मी ने गाय से कहा मैं तुम्हारे रूप में ही विचरण करूंगी जो तुम्हारी सेवा करेगा उसके घर में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहेगी। उसी दिन से सोहराई से ही लक्ष्मी के रूप में गाय की सेवा की जाती है।

सोहराई की रात सब घरों में दिया जलाया जाता है। अरण्डी की पत्ते छप्परों पर फेंके जाते हैं। गाय बैलों के सींगों पर तेल लगाया जाता है। रात्रि में गांव के बड़े लड़के घर-घर धान मांगने जाते हैं जिसे 'माथेर' मांगना कहते हैं। यह एक प्रकार से लक्ष्मी के आगमन के लिए रात में जागने का काम होता है। मध्य रात्रि घर के प्रमुख गोशाला में जाकर गायों की पूजा करते हैं। प्रातः गाय-बैलों को चराने के लिए ले जाया जाता है। छोटे बच्चे घर-घर जाकर चावल और उड़द का दाल मांगते हैं जिसे 'दसामासा' कहते हैं।

महादेव या दाईल परब

यह पर्व नगेसिया जनजातियों में विशेष रूप से मनाया जाता है। नगेसिया लोग इस त्यौहार के पहले उड़द दाल को बिना छिले, बिना दले ही खाते हैं इसलिए इसे दाईल पर्व कहते हैं। यह उत्सव महादेव पार्वती के विवाह का उत्सव है। दोपहर गांव के लोग एकत्रित होकर महादेव और पार्वती की पूजा करते हैं। चावल की कई प्रकार की रोटी पकाते हैं। रात्रि में महादेव नृत्य चलता है नृत्य के लिए एक लड़कियों का और दूसरा दल लड़कों का बनता है। कुछ लड़के बाजा बजाते हैं। गीत के साथ नृत्य प्रारंभ होता है। गीत प्रश्नोत्तर ढंग का होता है। कुछ गीत पुराने होते हैं। साथ ही गीतों में प्रश्न बनाकर पूछना तथा गीतों में ही उत्तर देना होता है।

बाईल पूजा और सहिया गुहिया-

खेतों में धान के पक जाने पर किसी सोमवार के दिन लोग धान की बाली को लेगर बैगा के साथ सरना पर जाते हैं तथा पूजा करते हैं। रात्रि घर में चावल की रोटी आकद बनाई जाती है। दूसरे दिन गांव की सभी महिलायें तथा कुंवारे लड़के बैगिन के साथ **सहिया गुहिया** मनाने के

लिए नदी के किनारे जाते हैं वहां पर देवी की पूजा की जाती है। कुछ पकवान आदि बनाकर खाते हैं। लड़कियां आपस में दोस्ती का संबंध जोड़ती हैं। जिसे सहिया या सखी जोड़ना कहते हैं। सखी जोड़ने के बाद एक दूसरे को नाम लेकर सम्बोधन नहीं करती हैं। 'सखी' सम्बोधन करती हैं। महिलाओं के प्रसाद को पुरुष वर्ग नहीं खाते हैं।

जनी शिकार उत्सव

इस त्यौहार का संबंध इतिहास से है। उरांव जाति का राज्य रोहतासगढ़ में था। उरां लोग उरांगन ठाकुर कहे जाते थे। मुगल काल 15वीं सदी में रोहतासगढ़ पर मुगलों का आक्रमण हुआ। मुगल सेना दो बार पराजित होकर वापस चली गयी। लुन्दरी बाई नाम की ग्वालिन ने भेदिया का काम किया। सरहूल त्यौहार के समय उरांगन ठाकुर पौरुष प्रदर्शन के लिए जंगल में शिकार करने जाते थे। उसी समय मुगलों का आक्रमण होने पर महिलाओं ने पुरुष का वेश धारण करके राजकुमारी सिनगी दाई और सेनापति की लड़की कैली दई के सेनापतित्व में मुगल सेना को पराजित कर दिया। लुन्दरी ग्वालिन ने मुगलों को बता दिया कि लड़ने वाली पुरुष नहीं महिलाएं हैं। मुगलों ने पुन: आक्रमण किया। उरांगन ठाकुरों की महिला सेना पराजित हो गई। उन्हें रोहतासगढ़ छोड़कर भागना पड़ा। इनकी एक शाखा राजमहल की पहाड़ियों की ओर चली गई तथा पहाड़िया कहलाई। दूसरी शाखा में छोटानागपुर की ओर बढ़कर रांची के पास राम्बे में डेरा डाला और विजयी हुई। तीन बार विजय मिलने की स्मृति में उरांव महिलाएं मस्तक पर तीन खड़ी लकीर गोदना गुदवाती हैं। रोहतासगढ़ की लड़ाई की स्मृति में उरांव महिलाएं प्रति बारह वर्ष में पुरुष वेश धारण करके शस्त्रास्त्र लेकर शिकार के लिए निकलती है। गीत गाती हैं। **बारह बछरे बईनी शिकार बईनी का मुड़े राजा पगरी बांधय गोड़े, निपुरे हाथे ढाल तलवारी बईनी का मुड़े राजा पगरी बांधय। बछरे जनी शिकार।** ❑

अभिनंदन....

कल्याण आश्रम के कार्यकर्ता ओमप्रकाश 'अग्गीजी' को मध्यप्रदेश का 'समाजसेवी' सम्मान

पंजाब का जो क्षेत्र विभाजन के बाद पाकिस्तान के हिस्से में चला गया वहाँ टोबा टेक सिंह (जिला लायलपुर) गांव में जन्म लेकर विभाजन की त्रासदी के साक्षी बने श्री ओमप्रकाश अग्गीजी ने सन् 1948 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बनाकर अपने तपस्वी जीवन की शुरूआत की। उन्होंने भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी जी के साथ श्रमिक क्षेत्र में कार्य किया और भारतीय मजदूर संघ के अखिल भारतीय संगठन मंत्री बने। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन में भारत का प्रतिनिधित्व किया। इस निमित्त विदेश यात्राएँ भी की।

96 वर्ष की आयु में भी निरन्तर वनवासी क्षेत्र में सेवाकार्य में जुटे हुए श्री अग्गी जी 10 वर्षों से वनवासी कल्याण आश्रम का कार्य करते हुए सक्रिय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसी साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले निष्ठावान समाजसेवी श्री ओमप्रकाश अग्गी जी को 'समाजसेवी' सम्मान प्रदान करते हुए मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तो गौरवान्वित है ही, वनवासी सेवा एवं संगठन से जुड़े प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए भी यह सम्मान प्रेरणा का स्रोत है। पूर्वांचल कल्याण आश्रम माननीय ओमप्रकाश अग्गी जी के दीर्घायुष्य की कामना करते हुए उनका हार्दिक अभिनन्दन करता है। ❑

भारतीयता को मजबूत करते हैं जनजातीय पर्व

-अतुल जोग, अ. भा. सह संगठन मंत्री

अश्विन का महीना था। वर्षा ऋतु समाप्त होकर थोड़ी थोड़ी ठंडक आरम्भ हुई थी। कल्याण आश्रम के कार्यकर्ता संजय कुलासपुरकर असम और मिजोरम के सीमावर्ती रैफलमारा गाँव में लोगों को मिलने गए थे। यहाँ रियांग जनजाति के लोग रहते हैं। संजय जी पीताराम रियांग जी के घर ठहरे थे । उत्तर पूर्वांचल के क्षेत्र में जल्दी सूर्योदय होता है। संजय जी की नींद खुली तब उनको मंद स्वर में महिलाओं की बातें सुनाई दे रही थी। भाषा समझ नहीं रहे थे। घर की खिड़की से उन्होंने बाहर देखा। गाँव का समस्त महिला समाज सजधज कर हाथ में पूजा की सामग्री लेकर जंगल की ओर जा रहा था। संजय जी को लगा कि आज इन लोगों का कुछ पर्व है। कुछ समय बाद जब घर में चाय नाश्ता के समय उन्होंने पीताराम जी की श्रीमती को पूछा कि आज सबरे सबेरे आप लोग कहाँ गए थे ? महिला ने बताया आज हमारा गंगा पूजन का कार्यक्रम था इसलिए हम सब नदी की पूजा करने गए थे। यह हमारी पुरानी परंपरा है। **संजय जी को आश्चर्य हुआ कि यहां गंगा नदी है नहीं फिर भी सभी नदियों को पवित्र गंगा नदी के रूप में देखना एवं उसकी पूजा करने का संस्कार इस समाज में गहरा पैठा हुआ है।**

जनजाति समाज का धर्म नहीं है, संस्कृति नहीं है, कोई आध्यात्मिकता नहीं है ऐसी मान्यता है पढ़े लिखे लोगों में व्याप्त है। हाँ, जनजति समाज की भाषा, उत्सव, पोशाक अथवा चेहरा अलग हो सकता है लेकिन वो भी भारत का ही चेहरा है। जब इनके सांस्कृतिक पहलुओं की जानकारी लेंगे तो पता चलता है कि भारत के जनजाति लोगों की कालगणना भी भारतीय कालगणना है। जैसे चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ ....फाल्गुन महीने आते हैं। इन महीनों के नाम हर जनजाति भाषा में अलग अलग होते हैं जैसे अंगामी नागा समाज में मेना ख्रू , केरुन्यी, रसे, खुथो, चन्यी, बिन्यी,ओशो, सिएदी, तेरून, सोक्रेन, चूस,न्गुन्यी होते हैं। कई जनजातियाँ पूर्णिमा को पवित्र मानती हैं। जैसे जेलियांग एवं रोंगमई नागा समाज में लोग पूर्णिमा के दिन सबेरे जल्दी उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर परिवार सहित मंदिर में जाते हैं। मंदिर के बाहर सभी लोग पंक्तिबद्ध होकर खड़े रहते हैं और सूर्य भगवान की प्रार्थना करते हैं। उसके बाद मंदिर में जाकर भी प्रार्थना करते हैं। असम के बोडो जनजति के ब्रह्म समाज के लोग पूर्णिमा के दिन गाँव की यज्ञशाला में एकत्रित आकर यज्ञ हवन करते हैं। यज्ञ की समिधा में फलों को भी अर्पित करते हैं। यज्ञ का पौरोहित्य महिला भी करती है। इन समाज की कालगणना में भी हर दो वर्ष के बाद अधिक मास आता है।

नए वर्ष को मनाने की परम्परा भी है जैसे चैत्र मास में झारखण्ड, छत्तीसगढ़ के उराँव समाज के लोग सरहुल उत्सव बड़े धूमधाम से मनाते हुए नए वर्ष का स्वागत करते हैं। असम का बिहू तो दुनिया में प्रसिद्ध है जो लगभग एक महीने तक चलता है। संथाल समाज में भी सरहुल का त्यौहार बड़े उत्साह के साथ मनाते हैं। इनके उत्सव पर्व का चक्र कृषि आधारित होता है। इनका भी नव वर्ष चैत्र अथवा वैशाख में आरम्भ होता है। मणिपुर के रोंगमई समाज के लोग गंगाई, मिज़ो लोग चपचार कुट, असम में दिमासा जनजाति बन्धु बिशु उत्सव मनाते है। इस प्रकार सभी जनजातियाँ ईश्वर को प्रकृति प्रदत्त धनधान्य समृद्धि के लिए पूजा करते हुए कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

अरूणाचल प्रदेश के अंगामी समाज के बुजुर्गों के साथ जब चर्चा चली थी तब वे बता रहे थे कि हमारी

मान्यता है कि ''भूमि माता -आकाश पिता'' और यह मान्यता अनेक जनजतियों में है जो भारत की मान्यता है। **इसलिए तो हम ''भारत माता की जय'' कहते हैं। दुनिया के किसी देश में अमेरिका माता, चीन माता, जापान माता कहते हुए सुना है ? यह भारतीय अवधारणा है कि भूमि माता है। इसलिए अपने ग्रंथों में कहा है ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''** भारत का जनजाति समाज प्राणियों के प्रति भी कृतज्ञता व्यक्त करता है। संथाली समाज में दिवाली के समय तीन दिन अथवा पांच दिन गौमाता को प्रेम से नहलाकर उसके सींग पर तेल लगाते हैं, फूलों की माला उसको सम्मान के साथ पहनाते हैं एवं प्रेम के साथ उसको खिलाते हैं। यही भाव अन्य जनजाति के लोगों में भी है। कुल मिलाकर त्यौहार, पूजा-पर्व ईश्वर, प्रकृति, पूर्वजों के प्रति श्रद्धा और निष्ठा व्यक्त करने का प्रकट करने का अवसर है। यह सांस्कृतिक विविधता यह विभिन्नता और विच्छिन्नता नहीं है, यह विशेषता है, पहचान है ।

इसके अन्दर आध्यात्मिक और दार्शनिक समानता का सूत्र है, इसको समझना होगा। यह एकता का सूत्र क्या है? यह है- ईश्वर सर्वव्याप्त है, वह अनेक रूपों में व्यक्त होता है, उसके अनेकों नाम हो सकते हैं लेकिन ''वह'' एक है। यहाँ सभी का सम्मान एवं आदर है। इस कारण आपस में संघर्ष नहीं– परस्पर पूरकता है, सह अस्तित्व है, शांति है-ईर्ष्या नहीं, बड़े छोटे का भाव नहीं, परिवर्तन के नाम पर खींचातानी नहीं। यह भारत की विशेषता है जो दुनिया के अन्य देशों के लिए आश्चर्य है, पहेली है। उनको लगता है समानता में ही एकता है और समानता के लिए धर्मान्तरण, धर्म परिवर्तन आवश्यक है। लेकिन भारत ने दुनिया को दिखाया है कि इतनी भाषा, जाति, परंपरा, भगवान, पूजा पद्धति, उत्सव त्यौहार की विविधता होते हुए भी देश और समाज एक है, अखंड है। इस भारतीयता को मजबूत करना है तो अपनी संस्कृति को समझना होगा, उसे अपनाना होगा और बढ़ाना होगा। ❑

अनुकरणीय

बालीगंज निवासिनी श्रीमती शीला मोहता बहुत ही संवेदनशील एवं उदारहृदया महिला हैं। कल्याण भारती के गत जुलाई-सितम्बर 2017 के अंक में वनवासी जोड़ों के सामूहिक विवाह की चित्रों सहित झलकियाँ प्रस्तुत की गई थी। शीलाजी इस कार्य से इतनी अधिक प्रभावित हुई कि अपने नियमित अनुदान के अतिरिक्त दो वनवासी जोड़ों के विवाह हेतु सहर्ष राशि प्रदान कर दी। उनका यह सहयोग सचमुच वनवासी के सर्वांगीण विकास की दिशा में एक सराहनीय कदम है।

- गत 5 अक्टूबर 2017 को अखिल भारतीय वनवासी कल्याण आश्रम के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष कृपा प्रसाद सिंह को हरियाणा के कार्यकर्ताओं ने वनवासी सेवा एवं संगठन कार्य हेतु 8,51,000/- का धनादेश प्रदान कर अपनी सामाजिक सचेतनता का परिचय दिया।

- सेवाकुंज आश्रम के खरवार जनजाति के अपने विद्यार्थी वीरलाल को महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के दीक्षांत समारोह में सम्मानित किया गया। विश्वविद्यालय की प्रतियोगिता में सीनियर गट में उसे स्वर्ण पदक मिला है। इसी विद्यार्थी को पहले राज्यपाल महोदय ने भी सम्मानित किया था। कल्याण आश्रम परिवार की ओर से वीरलाल को अभिनन्दन। ❑

आगामी कार्यक्रम

मकर संक्रान्ति के पावन पर्व पर आगामी 14-15 जनवरी 2018 को जनजागरण अभियान के तहत पूर्वांचल कल्याण आश्रम कोलकाता-हावड़ा महानगर की सभी समितियाँ अपने-अपने क्षेत्रों में कैंप लगायेंगी। समग्र समाज इस पावन दिन पर वनबंधु का स्मरण कर दायित्व बोध का परिचय दे एवं सहयोग का हाथ बढ़ाकर मकर संक्रान्ति को सही अर्थों में **'सम्यक् क्रांति'** बनायें।

ब्रू (रियांग) जनजाति के महत्वपूर्ण त्यौहार एवं पूजा पद्धति

- *डॉ. दोनीरूंग रियांग*

'ब्रू' यानि रियांग जनजाति समाज अनेक देवी-देवताओं को मानते हैं। वे लगभग सनातन धर्म की मान्यता से बहुत मिलते-जुलते हैं। इनके पूर्वज हिन्दू समाज के ही अंग थे। पर अब धर्मान्तरण के कारण अनेक लोग इसाई धर्म को मानने लगे हैं। फिर भी कुछ लोग आज भी हिन्दू धर्म को मानते हैं एवं अपने त्यौहार और रीति रिवाजों का पालन करते हैं। इस समाज के महत्वपूर्ण त्यौहार निम्नलिखित है-

सोंगक्रान्ति

सोंगक्रान्ति जो मकर संक्रान्ति के नाम से हिन्दू समाज के लोग मनाते हैं। इस दिन सुबह ब्रह्म मूहुर्त में उठकर नदियों में स्नान करके, फूल और पूजा फल और अगरबत्तियाँ जलाकर गंगा माता की पूजा करते हैं। उसके बाद सभी लोग मन्दिर में जाकर पूजा करते हैं। इस दिन को बहुत हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।

ब्रू बोईसू

यह असम में 'बिहू' के नाम से प्रसिद्ध है । इस दिन की तैयारी एक महीने पहले से शुरू कर देते हैं। यह त्यौहार अप्रैल महीने में आता है। यह ब्रू समाज का नया साल होता है। इस त्यौहार में सभी रिश्तेदार, जो दूर-दूर के हैं वे भी एक दूसरे से मिलने आते हैं। बड़े धूमधाम से मनाते हैं। यह त्यौहार 2-3 दिन तक मनाया जाता है।

1) बाईसू स्कॉग (2) हरी बोइसू (3) बाईसू मा

पहले दिन में लोग मिठाईयाँ एवं अन्य पकवान बनाते हैं जो हर अलग प्रकार का चावल मिलता है जिसे 'माइमी माईरोंग' कहते हैं और तेल भी जो घर का बना हुआ स्पेशल तेल होता है जो, तिल्ली का तेल होता है। इस दिन तीन प्रकार की मिठाइयाँ बनती है जो 'मायमी रूमो, माईमी पेंगमो, माईमी याऊमों' के नाम से जानी जाती हैं।

माईमी रूमों-यह चावल के आटे को केले के पत्ते में बंद कर टोपिया में उबालते हैं।

माईमी पेंगमो-यह पकवान चावल के आटा को बाँस के अन्दर डाल कर पकाते हैं।

माईमी याऊमो-यह पकवान तिल्ली के तेल से तल करके बनाते हैं।

दूसरे दिन- बाईसू का अगला दिन हरी बाईसू नाम से जाना जाता है। इस दिन ''ताउतोई खांगमो साल'' अण्डे इकट्ठा करने का दिन नाम से जाना जाता है। सभी युवक-युवतियाँ घर-घर जाकर नाच गाना करते हैं। जिस घर में वे लोग नाचने जाते हैं उस घर के लोगों को अण्डा या पैसा कुछ भी देना होता है।

तीसरे दिन-'बोइसू मा' इस दिन सभी पुरुष लोग 'गोरोईया थागमी' नाचते हैं। गोरोईया को बहुत ही पवित्र भगवान मानते हैं। इस दिन शंकर भगवान जी का पूजा के रूप में 'गोराईया' नाचते हैं। जो इसमें भाग लेते हैं वे एक गोलाकार रूप में खड़े होते हैं और पुजारी उनके बीच में त्रिशूल को जमीन पर गाड़ते हुए हुए इसके चारों तरफ नाचते हैं और पुजारी कुछ मंत्र या गाना गाते हैं और उनके पीछे अन्य नाचने वाले दोहराते हैं।

3. होजागिरि-यह त्यौहार बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इस दिन अलग-अलग जगह से लोग आते हैं। नाच-गाने और नाटकों की प्रतियोगिताएँ होती हैं। पूरा समाज एकत्रित होता है।

4. लोक्सी पूजा-यह पूजा अपनी खेती से प्राप्त धान को खाने की शुरूआत करने के पहले की जाती है। इस दिन खेती के प्राप्त कुछ भी सब्जी हो या नए धान को खाने से पहले लक्ष्मी माता की पूजा करते हैं। साल भर में लक्ष्मी माता की कृपा से जो मिला है उसको धन्यवाद देना या आगे कृपा बनी रहे इस आशा को लेकर पूजा और धन्यवाद ज्ञापन करते हैं।

5. काली चामो- यह पूजा ठण्ड के मौसम में हर साल करते हैं जो नदी में की जाती है। गंगा माता की पूजा करते हैं। इस दिन बलि चढ़ाने की प्रथा है, जो बकरी या मुर्गे की बलि दी जाती है।

'ब्रू' पूजा और भगवान का नाम

शिब्राई- जो शिव जी के नाम से पुकारते हैं।

तुईमा- गंगा माता

माइनौमा- लक्ष्मी माता

खुलूमा-कोटोन या अन्य धान की माता

गोराईया-अच्छा स्वस्थ देने वाला भगवान

सोंग्रोग्मा-पृथ्वी माता या धरती माता

हाथाई क्चूमा-पर्वत माला

बुराहा-जंगल का देवता

थूनाईराऊ-मृत्यु का देवता

बोनीराऊ-आत्मा देवता

नौसूमा-घर का देवता

अलग अलग भगवान के नाम से पूजा अर्चना होती है। जैसे घर का कोई भी सदस्य बीमार होता है तो सबसे पहले पुजारी जो आओकचाई या बोईदो के नाम से जाना जाता है उसको दिखाते हैं। पुजारी उस व्यक्ति की बीमारी का कारण बताते हैं। अगर पुजारी बताते हैं कि इन भगवान की पूजा करनी हैं तो उस परिवार वाले उसी भगवान की पूजा करते हैं। मान्यता है कि बीमार आदमी की तबियत उसी दिन ठीक हो जाती है। पूजा में बलि चढ़ाने की पद्धति है। पवित्र जल कुआँ से लाकर कुछ मंत्र पढ़कर उस पानी में फूँकते हैं और बीमार आदमी को पिलाया जाता है।

बच्चे के जन्म दिन की पूजा

जिस दिन बच्चे का जन्म होता है तब बच्चे के स्वास्थ्य और उसकी लम्बी उमर के लिए पूजा अर्चना की जाती है। बच्चे का जन्म अधिकतर घर में ही होते हैं अस्पताल में तो जब बहुत ही परेशानियाँ हो तब जाते हैं। इस दिन कुमायूँ जो बुजुर्ग महिला होती हैं वे माता के कोख को गरम पानी से छूकर आराम से बच्चा पैदा करवाती हैं और नामकरण में भी सबसे पहले यही महिला ही होती है। उसके बाद पंडित लोग एक पुस्तक देखकर तिथि के अनुसार नामकरण करते हैं।

मृत्यु के बाद की पूजा पद्धति

समाज में किसी की मृत्यु होने पर अग्नि संस्कार करने की पद्धति को अपनाते हैं। उसके बाद घर को तुलसी के पत्ते के साथ पानी छिड़क कर शुद्ध करते हैं और मृतक की अस्थियों को दूसरे दिन इकट्ठा करते हैं और एक 'चराइनोक' (छोटी सी झोपड़ी) में रखते हैं।

माईबाऊमी

इस दिन मृतक व्यक्ति के नाम से खाने पीने का पकवान चढ़ाते हैं।

क्थोईनैओनी

यह अंतिम तिथि के दिन मनाते हैं। इस दिन 'चेराईनोके' या 'मागचोक' घर बनाते हैं। वहां पर खाना, पीना, पैसे और घर का बना हुआ अरक या बीयर राईस चढ़ाते हैं। इस दिन घर की महिलाएं अस्थि को पीठ में लेकर नाचती हैं। उसके बाद पुजारी सब घर के सदस्यों के नाम से उसकी विदाई कराते हैं और वाफाईग (नाव) बनाकर उस नाव में अस्थियों को रखकर नदी में या गंगा नदी में विसर्जित करते हैं। ❑

विनम्र अनुरोध

वनवासी कल्याण आश्रम विश्व का सबसे बड़ा जनजातीय सेवा संगठन है जो वनवासी बंधुओं के सर्वांगीण विकास के लिए प्रतिबद्ध है। वर्तमान में अखिल भारतीय स्तर पर 755 पुरुष एवं 188 महिला पूर्णकालीन तथा हजारों अंशकालीन कार्यकर्ताओं के माध्यम से शिक्षा, चिकित्सा, संस्कार एवं स्वावलम्बन के 20,343 प्रकल्प संचालित हो रहे हैं। समाज बंधुओं के सहयोग से ही यह कार्य सतत् गतिमान है। इस विराट राष्ट्रीय कार्य हेतु निम्न योजनाओं के माध्यम से आपका आत्मीय सहयोग अपेक्षित है :-

1. एक छात्रावास का दायित्व	₹ 3,00 000 वार्षिक
2. 10 शिशु शिक्षा केन्द्र के एक संच का दायित्व	₹ 1,50 000 वार्षिक
3. 1 चिकित्सा शिविर का दायित्व	₹ 70,000 एक मुश्त
4. 1 पूर्णकालीन कार्यकर्ता का दायित्व	₹ 50,000 वार्षिक
5. 1 जलाशय निर्माण का खर्च	₹ 30,000 एक मुश्त
6. 1 चिकित्सा केन्द्र का दायित्व	₹ 20,000 वार्षिक
7. 1 शिशु शिक्षा केन्द्र/एकल विद्यालय	₹ 15,000 वार्षिक
8. छात्रावास के एक छात्र का दायित्व	₹ 10,000 वार्षिक
9. पांच संस्कार प्रकल्पों का दायित्व	₹ 7,500 वार्षिक
10. सेवा सहयोग	₹ 5,100 वार्षिक

सिक्रेनी त्यौहार

- डॉ. लोजहोहो खन्यो

हमारा देश भारत विभिन्न जन-जातियों से परिपूर्ण दुनिया का अनोखा देश है। इन जनजातियों के सांस्कृतिक पर्व ही भारत माता को अलंकृत करते हैं। भारत के उत्तर पूर्व राज्य नागालैण्ड में अँगामी नागा जनजाति प्रमुख जनजाति है जो मुख्यत: कोहिमा जिले में वास करती है। यह जनजाति मुख्यतः दक्षिणी अँगामी, उत्तरी अँगामी, पश्चिमी अँगामी और समस्थलीय अँगामी आदि भागो में बँटी है। वर्तमान में प्रमुख रूप से दक्षिणी अँगामी के लोग अपनी सनातन सांस्कृतिक परम्पराओं के पुन: जागरण हेतु प्रतिबद्ध हैं। अँगामी नागा समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक सुरक्षा हेतु **जाफुफिकी फुत्साना केसेकी सोसाइटी** का गठन हुआ है जो हर वर्ष अँगामी समाज का प्रमुख त्यौहार सिक्रेनी का आयोजन करती है। इनकी भाषा छाकेसांग, जेलियांग, माओ जनजातियों की भाषा से कुछ-कुछ मेल खाती है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् यहाँ तेजी से धर्मान्तरण हुआ है। लगभग 95 प्रतिशत आबादी ने ईसाई धर्म अपना लिया है फिर भी वे सिक्रेनी त्यौहार को धूमधाम से मनाते हैं।

अँगामी नागा जनजाति 5 भू तत्वों को मुख्य रूप से मानते हैं। आकाश को पिता, पृथ्वी को माता मानते हैं।**'उकेपेन्योफू' (विश्वविधाता)** सर्वशक्तिमान, सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वव्यापी हैं एवं निराकार रूप में समस्त प्रकृति में विद्यमान हैं। इसी धारणा को मानकर आत्मा के शुद्धिकरण हेतु हर वर्ष सिक्रेनी त्यौहार मनाया जाता है। गाँव के बुजुर्ग पुजारी तिथिपत्र (पंचांग) के अनुसार सोक्रेन माह (पौष-माघ) में तिथि का निर्णय करते हैं। फसल काटने के बाद इस त्यौहार पर गांव के पुजारी पिता एवं पुजारिन मां को भेंट स्वरूप अनाज देते हैं और वे दानदाता के सुखी जीवन की कामना करते हैं। परन्तु आज यह पद्धति प्राय: लुप्त हो रही है। सोक्रेन माह की 18 तिथि को पारम्परिक तरीके से मनाते हैं। घर के पुरुष समुद्र के पानी को बर्तन में लेकर अस्त्र-शस्त्र के साथ सामूहिक गान ''ओए७७ होए७७ ओए७७ होए७७ करते हुए कुएं पर एकत्र होते हैं। वहाँ दो युवक अग्नि प्रज्ज्वलित करते हैं। जल को देवता मानकर सभी की देह पर छिड़कते हैं तथा घर की सुरक्षा एवं सुख-समृद्धि की कामना करते हैं। अग्निदेव का आह्वान करते हुए गाते हैं -

हेई आपू आजे थो मेदो तेपू नेआमी मेनू
तेनो ने तेपू मेनू केवी केसीहो धू दो वे.....

अर्थात् ''मैं परम पिता-माता का नौजवान पुत्र अग्नि प्रज्ज्वलित करता हूँ। घर की स्त्रियाँ पुत्रवती हों हमारा सर्वमंगल हो। खुशी एवं उमंग से परिपूर्ण जीवन हो।'' ऐसी कामना की जाती है।

इस अग्नि को 24 घंटे तक बुझने नहीं देते हैं। पुरुष एवं स्त्रियाँ अलग-अलग चूल्हों को जलाते हैं। भोजन बनने के बाद नये चावल एवं सब्जी का धरती को भोग लगाते हैं एवं मौन रूप से मनोकामना करते हैं। राइस बियर की बूंदें केले के पत्तों पर परोसी जाती हैं।खाना बनने पर सगे-संबंधियों के बच्चों को बुलाकर खाना खिलाते हैं।

गांव के युवक-युवतियाँ एकत्रित होकर 'सिक्रेनी' त्यौहार के लोकगीत गाते हैं। पुरुषों द्वारा पूर्वजों द्वारा युद्ध में झेली हुई चुनौतियों की नृत्य द्वारा प्रस्तुति दी जाती है। सभी अपना-अपना कौशल लोकगीत, लोकनृत्य एवं खेलकूद द्वारा प्रदर्शित करते हैं। त्यौहार के अन्त में सभी युवक-युवतियां स्वदेशी खेलों का आनन्द लेते हैं। जैसे नागा कुश्ती, प्छेदा और महिलाएं तोरू केना खेलती हैं। यह त्यौहार तीन-चार दिन तक मनाया जाता है।

मित्रवत् व्यवहार एवं सुनहरे भविष्य की शुभकामनाएं दी जाती हैं। नये वर्ष के आगमन की खुशी का त्यौहार है अँगामी जनजाति का यह 'सिक्रेनी'। ❑

उत्तराखण्ड के पर्व एवं त्यौहार

- वर्षा चन्द्रकांत घरोटे, प्रान्त महिला प्रमुख-उत्तराखण्ड

त्यौहार हमारी संस्कृति और सभ्यता के सूत्रधार हैं। वे सहस्राब्दियों से हमारे जीवन में नव प्रेरणाओं का संदेश देते आ रहे हैं। वस्तुत: वे हमारे राष्ट्रीय एवं जातीय अस्मिता के आधार हैं।

पर्व एवं त्यौहार भारतीय लौकिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक प्रगति के सशक्त साधन हैं। इनसे हर्ष के साथ-साथ उत्तम जीवन जीने की प्रेरणा प्राप्त होती है। प्रचुर वनसंपदा, नैसर्गिक सौन्दर्य से भरपूर तपस्वियों की तपोभूमि, देवभूमि उत्तराखण्ड की संस्कृति में पर्व एवं त्यौहारों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। हर समाज की संस्कृति उसके लिए बेहद खास होती है। होली, दीपावली, मकर संक्रान्ति जैसे राष्ट्रीय पर्वों के अलावा उत्तराखण्ड के अपने भी विविध त्यौहार हैं, जो पारम्परिक रीति से मनाये जाते हैं।

हरेला

उत्तराखण्ड के परिवेश और खेती के साथ जुड़ा हुआ पर्व है। यह लोक पर्व कर्क संक्रान्ति को मनाया जाता है। हरेला पर्व हमें नई ऋतु के शुरू होने की सूचना देता है। हरेला का मतलब होता है-हरियाली का दिन। हरेला पर्व से सावन की शुरुआत होती है। सात अनाजों को मिलकर हरेला बोया जाता है। भूदेवी का आशीर्वाद प्राप्त करने वाला यह पर्व पूर्णत: कृषि आधारित है।

भिटुली

यह त्यौहार चैत्र माह में मनाया जाता है। इसमें कन्याओं को, लड़कियों को उपहार दिए जाते हैं। भाई अपनी बहनों को वस्त्र मिठाई देते हैं। उन्हें मायके में भी बुलाया जाता है। चैतगौरी की पूजा की जाती है।

फूलदेई

यह चैत्र माह में मनाया जाता है। घर के दरवाजे पर फूलों की वंदनवार लगाकर दरवाजे की देहरी पर फूलों की सजावट की जाती है। छोटे बच्चों को फूलों की माला पहनाई जाती है। फूलों के झण्डे बनाते हैं। यह वसंत ऋतु के स्वागत का त्यौहार है।

खतडूवा

पशुधन की कुशलता की कामना का पर्व है। कन्या संक्रान्ति को सूखी घासफूस का खतुडवा बनाकर उसे जला देते हैं। मैल्लो-मैल्लो का नारा लगाकर नाचते हैं। ककड़ी खीरा खाते हैं, तथा दूसरों पर मारते हैं। गढ़वाल विजय की यादगार में यह उत्सव मनाया जाता है।

घुघुतिया त्यौहार

मकर संक्रान्ति पर 'घुघुतिया' नाम पर यह त्यौहार मनाया जाता है। इस त्यौहार की अपनी अलग पहचान है। त्यौहार का मुख्य आकर्षण कौआ है। बच्चे इस दिन बनाये गये घुघुते 'काले कौआ, काले घुघुति माला खा ले' के गीत गाते हुए कौओं को खिलाते हैं। इस त्यौहार को पंछी संरक्षक पर्व भी माना जाता है।

घी संक्रान्ति

भाद्रपद माह के पहले दिन इसे मनाया जाता है। इस दिन खेती के औजारों का पूजन किया जाता है। उसे घी का तिलक लगाया जाता है। उड़द दाल भरकर चपाती बनाकर उसमें घी डालकर खाया जाता है। मान्यता है कि इस त्यौहार के बाद में अखरोट में मिठास बढ़ती है।

नंदा अष्टमी

इस दिन केले के तने से मां नंदा-सुनंदा की प्रतिमा बनाकर उनका पूजन किया जाता है। मेला भी लगता है। देवी को ब्रह्म कमल अर्पित किए जाते हैं। पारम्परिक नृत्य भी होते हैं।

बसंत पंचमी

बसंत ऋतु में यह त्यौहार मनाया जाता है। यह शीत ऋतु की समाप्ति का त्यौहार है। यह माघ माह में आता है। इस शुभ दिन माँ सरस्वती का पूजन करते हैं। उसे पीले फूल पीला प्रसाद अर्पित करते हैं। स्वयं भी पीले वस्त्र

धारण करके पीला तिलक लगाते हैं। बसंत पंचमी से ही बैठकी होली का आयोजन होता है।

गंगा दशहरा

ज्येष्ठ मास की शुक्ल एकादशी को मनाया जाता है। इस दिन गंगापूजन एवं गंगा स्नान का विशेष महत्व होता है। ब्राह्मणों द्वारा घर के दरवाजे पर प्रतीक चिन्ह बनाए जाते हैं, कहा जाता है कि इस प्रतीक के कारण घर में वृद्धि होती है। घर पर से काली नजर दूर हो जाती है।

उत्तराखण्ड के सभी त्यौहार जल-जमीन जंगल की सुरक्षा, संरक्षण एवं निसर्ग पर प्रेम के अति उत्कृष्ठ उदाहरण है। त्यौहार मनाने के आनन्द के साथ पर्यावरण की सुरक्षा भी होती है। अपनी धरती से जुड़े रहने की एवं दूसरों की मदद करने की हमारी प्रवृत्ति बनती है। साक्षात् शिवभूमि उत्तराखण्ड हमेशा अपनी तपस्या, शूरवीरता, निसर्ग सौन्दर्य, विविध मेले, यात्रा, रंगारंग पर्व एवं त्यौहारों के लिए प्रसिद्ध रहेगा। ❑

करमा पूजा

-कृपा प्रसाद सिंह, उपाध्यक्ष अ.भा.वनवासी कल्याण आश्रम

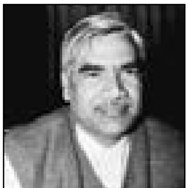

देश के बड़े जनजातीय क्षेत्र में करमा पूजा का प्रचलन है। सामान्यत: धान की रोपाई के पश्चात् और दशहरा दुर्गापूजा के पहले करमा की पूजा जनजातीय परिवारों में आयोजित होती है। भादो के अन्त व क्वार के प्रथम सप्ताह में रांची के आस पास खास कर पूरे छोटानागपुर में करमा पूजा का विशेष महत्व है। नवमी-दशमी या अपनी सुविधा की तिथि पर इस कथा या पूजा का आयोजन समाज करता है।

पूजा के स्वरूप में पूजा के पूर्व करमा पेड़ की डाली काटकर लड़के-लड़कियाँ लाते हैं एवं पूजा स्थल पर भगवान की स्थापना स्वरूप इसकी स्थापना करते हैं। पूजा के दिन महिलाएं खासकर कुंआरी लड़किया उपवास करती है। पूजा के प्रारंभ में चूड़ा-गुड़,या चावल से निर्मित तेल में छाना हुआ पुआ (मीठा मालपुआ) की व्यवस्था कर पूजा स्थल पर रखते हैं। भगवान के स्वरूप में स्थापित करमा पेड़ की डाली के समक्ष सभी व्रती कन्याएं दीप जलाती हैं। दीप अर्पण के साथ भगवान शंकर का पूजा स्थल पर आह्वान किया जाता है। व्रती कन्याएं पार्वती के रूप में उपवास करती हैं एवं अच्छी फसल, अच्छी बारिश व सुख-सुविधा के लिए भोले शंकर से प्रार्थना करती हैं।

पूजा के समय पूजा स्थल पर सभी व्रती कन्याओं को एक कथा सुनाई जाती है। गाँव के बैगा/पुजारी इस कथा का वाचन करते हैं। भगवान के रूप में स्थापित करमा पेड़ की डाली को गोलाई के घेरे में व्रती कन्याएं घेर कर बैठ जाती हैं। मध्य में एक करमा पेड़ से लगा एक बांस का ध्वजदण्ड होता है जिसके ऊपर एक सफेद वस्त्र का ध्वज लगता है। यह ध्वज सादगी व संयम का प्रतीक होता है। इस ध्वज की उपस्थिति में व्रती एवं परिजन शुद्ध शाकाहारी रूप में भगवान के समक्ष याचक होते हैं। करमा की कथा के क्रम में जब-जब अच्छे कर्म का दृष्टांत आता है जनसमुदाय पुष्प वृष्टि करते हैं। व्रती महिलायें पूजा में साड़ी ब्लाउज पहनकर शुभ्र वेश में ही बैठती हैं। करमां-धरमा ये दो भाई इस कथा के मुख्य पात्र हैं। करमां-धरमा के माता-पिता के संतान नहीं थी। वे जंगल में करमा पेड़ के समक्ष संतान के लिए प्रार्थना करते हैं, उपवास रखते हैं और इस प्रकार कुछ माह के पश्चात् उनको संतान की प्राप्ति होती है। तब से करमा-धरमा के माता-पिता का अनुकरण करते हुए समाज के लोग संतान प्राप्ति हेतु इस करमां के पेड़ को भगवान का स्वरूप मानकर पूजा करते हैं। पूजा की प्रक्रिया पूरा होते ही भगवान के स्वागत स्वरूप मांदूर एवं घंटा बजना प्रारम्भ होता है। सभी व्रती इस अभिवादन में शामिल होते हैं और सामूहिक नृत्य स्थापित देवता को घेरे में लेकर प्रारंभ होता है। यह कथा रात्रि 10 बजे तक पूरी हो जाती है और प्रात: सूर्योदय के समय तक भगवान को प्रसन्न करने के लिए नृत्य चलता रहता है। सूर्योदय होते ही करमा पेड़ से लाई गई उस डाल की सामूहिक पूजा अक्षत, दूब व आम के पत्ते से होती है और सामूहिक रूप से नदी या तालाब में उसको प्रवाहित करते हैं। ❑

उत्साह और उमंग का प्रतीकः टुसु पर्व

- सुरेश चौधरी, वरिष्ठ साहित्यकार

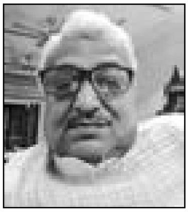

भारत की प्रमुख पर्वत श्रृंखलाओं में मध्य भारत में स्थित सतपुड़ा रेंज मुख्य है जो विन्ध्य की रेंज से होते हुए गुजरात, मध्य भारत होते हुए छोटानागपुर के पठार पर समाप्त होती हैं। अगर भौगोलिक दृष्टि से देखें तो छोटानागपुर का पठार करीबन 64000 वर्ग मील का क्षेत्र है जो इतिहासकारों के अनुसार नागवंशियों का राज्य हुआ करता था। बृहद क्षेत्र की बात करें तो छोटानागपुर पठार में ओड़िशा की महानदी के नीचे के हिस्से से प्रारंभ यह क्षेत्र बंगाल के झारग्राम तक और उत्तर में वर्तमान छत्तीसगढ़ में सरगुजा तक फैला हुआ है, इसमें पूरा झारखण्ड, बंगाल के पुरुलिया, मिदिनापुर का कुछ क्षेत्र (झाड़ग्राम) ओड़िशा के मयूरभंज, बडबिल, बर्सोवा, सुंदरगढ़, छत्तीसगढ़ का अंबिकापुर, सरगुजा का क्षेत्र आता है। भौगोलिक दृष्टि से इसे वृहद् झारखण्ड कहना चाहिए। यहाँ की संस्कृति, पर्व-त्योहार, खान-पान, रहन-सहन आम तौर से सामान है। यहाँ की कुल 32 जनजातियों में मुंडा, महतो, उरांव, संथाल आदि मुख्य हैं। इनके त्योहारों में सरहुल, करम, जावा, टुसू, पुन्हैया, भगता इत्यादि हैं।

कोल्हान क्षेत्र ओड़िशा एवं उससे सटा पश्चिम सिंहभूम का हिस्सा हुआ। उसके साथ का क्षेत्र, पूर्वी सिंहभूम (जमशेदपुर), तमाड़, रांची, बंगाल का पुरुलिया, झारग्राम में टुसू धूमधाम से मनाया जाता है। भारत की आजादी के आंदोलन के दौरान इस क्षेत्र का एक महान इतिहास देखा गया है। यह टुसू पर्व मकर संक्रांति के साथ पड़ता है। यह अविवाहित लड़कियों के लिए भी है। लड़कियाँ एक लकड़ी / बांस रंग के फ्रेम को कागज के साथ लपेट कर, उपहार की तरह सजाते हैं और पास के पहाड़ी नदी मे प्रवाहित कर देते हैं। यद्यपि इस त्यौहार पर उपलब्ध कोई दस्तावेज या इतिहास नहीं है, लेकिन यह जीवन और रस से भरे गीत इस त्यौहार प्रमुख विशेषता है। ये गीत जनजातीय लोगों की सादगी और मासूमियत को दर्शाते हैं। इस त्यौहार में नृत्य की भूमिका विशेष होती है। नदियों के किनारे मेले लगते हैं, सम्पूर्ण आदिवासी जनता वहां एकत्रित होकर सामूहिक नृत्य करती है। नए रंग बिरंगे कपड़े पहन वन बालाओं का नृत्य अतिमोहक होता है। एक सप्ताह चलने वाला यह त्यौहार उत्साह, उमंग और संस्कृति का अद्भत नमूना है।

मैंने बाल्यकाल में कई टुसू कै मेले देखे हैं, उनका लुत्फ लिया है। वे स्मृतियाँ कभी भी विलीन नहीं हो सकती। मेरी एक कविता इस विषय पर.....

ये पगडंडियाँ
चढ़ती हैं
टेढ़ी मेढ़ी सी
उस पहाड़ी की ओर
और उतर जाती हैं सीधे
अतीत के अंतराल को छोड़ते
अंतस की गहराइयों में
चीरती हुई जंगल जलेबी के पेड़ों को
जहाँ है एक नैसर्गिक सौन्दर्य
मिलन स्वर्णरेखा एवं खरकई का
पर अब नहीं रहा वह प्राकृतिक दृश्य
जहां लगता था कभी
मेला टुसू पर्व का
ऊपर-नीचे जाते लकड़ी के झूले
चाट पकौड़े के खोमचे
लगती थी ढेर सारी दुकानें
अब वहाँ चार लेन की सड़क हो गयी है
उसके साथ हो गया है कंक्रीट का जंगल
आती जाती गाड़ियों का प्रदूषण
आधुनिकीकरण में खो गया
वह सौन्दर्य
और साथ ही खो गया है
वह पचास साल पुराना बचपन
आज भी बचपन बुलाता है
बार बार जाकर उन पगडंडियों को
नीचे खींच लाने का
प्रयत्न करता है। ❑

जनजाति समाज के पारंपरिक त्यौहार -कालिक महत्व

- रमेश बाबू, अ.भा. श्रद्धा जागरण प्रमुख

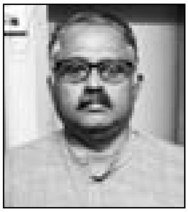

भारत विशाल देश है। 125 करोड़ वाले इस देश में लगभग 11 करोड़ अनुसूचित जनजाति के बंधु निवास करते हैं। यह समाज सम्पूर्ण देश में फैला हुआ है और 600 के करीब विभिन्न जातियों में बँटा हुआ है।

इन जनजातियों की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी ''श्रेष्ठ सांस्कृतिक पहचान।'' पर इस सांस्कृतिक पहचान को मिटाने या विकृत करने के प्रयास में ईसाई मिशनरियां लम्बे समय से लगी हुई हैं। पम्परागत संकृति से उन्हें अलग करने हेतु धर्मान्तरण के जरिये मिशनरियों द्वारा किये जाने वाले प्रयासों के परिणामस्वरूप जनजाति समाज के 12% लोग ईसाईयत को ग्रहण करने में मजबूर हुए हैं। प्रलोभन और धमकावे जैसे कुटिलतापूर्ण तरीका अपनाते हुए भोले-भाले जनजाति बंधुओं को धर्मान्तरित करने में मिशनरियों ने आंशिक सफलता पायी है।

श्रेष्ठ सांस्कृतिक पहचान को सही ढंग से विश्लेषण करेंगे तो इन सारे बुनियादी बिन्दुओं पर विचार करना पड़ेगा। उनकी भाषा, देवी-देवता के बारे में उनकी संकल्पना, जन्म से मृत्यु तक को उनके विभिन्न संस्कार, वेश-भूषा, पूजा-पद्धति (प्रकृति पूजा), खान-पान, भगवान के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए किये जाने वाली उनकी लोक कला, उनकी न्याय वावस्था, घर की बनावट और सजावट, पितरों और महापुरुषों के प्रति किये जाने वाले पूजा-अर्चना आदि सब महत्वपूर्ण बिन्दुओं से उनकी पहचान जुड़ी हुई है। इसलिए ''परम्परागत धर्म नष्ट होने पर संस्कृति नष्ट होगी, और संस्कृति नष्ट होने पर पहचान मिट जायेगी'' यह जनजाति समाज के अस्मिता की रक्षा का नया नारा बना है । इसलिए वनवासी कल्याण आश्रम ने अपने कार्य और प्रस्तावों द्वारा जनजाति समाज के संस्कृति को पुष्ट करने हेतु 1) जनजाति समाज के परम्परागत पूजा स्थल को सुरक्षित रखने 2)जनम से मृत्यु तक का संस्कारों को परंपरागत प्रौढी के साथ पालन करने और भावी पीढ़ी हेतु उसे अपनी मातृभाषा में लिपिबद्ध करने 3)जनजाति समाज का परम्परागत पुजारियों को सम्मान देने और (4) पम्परागत त्यौहारों को समूहिक रूप से मानाने के लिए बल दिया है । इस प्रयास से जनजाति समाज की असली पहचान को सुरक्षित रखा जा सकता है और इन सभी के प्रति किये जाने वाले श्रद्धाजागारण से समाज के वास्तविक पहचान अक्षुण रह सकती है।

कुछ जनजाति समूहों का वैविध्यपूर्ण त्यौहारों का उल्लेख मात्र मैं यहाँ करना चाहता हूँ । 1) कार्बी समुदाय के रोंगकेर पूजा, 2) सोनोवाल समुदाय का बैथो पूजा, 3) उरांव जनजाति समुदाय करम पूजा, 4) बोडो समुदाय की ब्विस्वागु पूजा, 5) मिशिंग समुदाय का अली-आये लिगांग पर्व, 6) मेघालय के खासी समुदाय का ''का बाद सुक मिन्सियेम'' उत्सव, 7) गारो समुदाय का वान्गाला उत्सव 8) निशि जनजाति का न्योकुम और बुरी बूत पर्व, 9) मिजी समुदाय का खान पर्व, 10) मोनपा समुदाय का लोसर पर्व, 11) गालो समुदाय का मोपिन पर्व, 12) नोक्टे समुदाय का चलो लोकु पर्व , 13)अपातानी समुदाय का ड्री पर्व, 14) ईदू मिशिमी समुदाय का रेह पर्व, 15) तागिन समुदाय का सी- डोन्यी पर्व, 16) मिशिमी समुदाय का तमलादु पर्व, 17) आदि लोगों का सोलुंग पर्व, 18) अंगामी लोगों का सेक्रेय्नी पूजा, 19) जेलियांग समुदाय

का चेगा गादी पर्व आदि सनातन धर्म के अंतर्गत आने वाले विभिन्न त्यौहार हैं ।

जिसका कोई आदि नहीं वही सनातन है। आदि नहीं होने के कारण अंत भी नहीं है । इस धर्म का आविर्भाव सृष्टि के प्रारंभ के साथ साथ होने के कारण यह सनातन है। सनातन यानि जिसका अस्तित्व तीनों कालों में है। सूर्य मंडल का उदाहरण लें। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करता है, चन्द्र पृथ्वी की परिक्रमा करता है। अन्य ग्रह भी इसी प्रकार सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। उसकी एक निश्चित समय सारणी होती है , जैसे शनि की परिक्रमा 30 साल में पूरी होती है और गुरु ग्रह की 12 साल में उसी प्रकार इन ग्रहों के बीच पारस्परिक आकर्षण शक्ति भी होती है। यह सारा सूर्य मंडल सृष्टि के प्रारम्भ से आज तक पूर्णत: ताल बद्ध , काल बद्ध , सूत्र बद्ध चलता रहता है। इस शाश्वत क्षमता का नाम है प्रकृति धर्म । धर्म के बिना यह संभव नहीं। हमारे अत्यंत छोटे व्यावहारिक जगत में भी जब इस प्रकार के धर्म प्रवर्तन में च्युति या त्रुटि होती है, तब विनाशकारी दुर्घटनाएं (रेल दुर्घटना जैसी) घटती हैं। यदि प्रकृति के स्तर पर इस प्रकार की अत्यंत छोटी फिसलन होती है तो कल्पनातीत सत्यानाश अवश्यम्भावी है। सनातन धर्म का महत्व इस से प्रतीत होता है। प्रकृति के सामंजस्य को बनाए रखने में जनजाति समाज का सनातन सांस्कृतिक जीवन शैली अति महत्वपूर्ण है। प्रकृति में परमेश्वर का दर्शन करते हुए प्रकृति की पूजा अर्चना करना सामंजस्य को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है। यही जनजाति समाज का 'सनातन संस्कृति का कालिक महत्व है'।

भारत का सनातन संस्कृति वैविध्य पूर्ण है। यह विविधता विधाता का दिव्य और प्रबल इच्छा से हुआ है (एकोहम बहुश्याम)। इस प्रकट जगत में व्याप्त सभी विभूतियों के अन्दर विधाता का अस्तित्व विद्यमान है। ❑

गोंड जनजाति का प्रमुख उत्सव : मंडई

- श्रीमती माधवी जोशी, अ.भा.महिला प्रमुख

हमारे देश में विभिन्न जनजातियां अलग-अलग प्रदेशों में रहती हैं। उनमें से एक प्रमुख जनजाति गोंड है जो महाराष्ट्र, विदर्भ के चन्द्रपुर, गढ़चिरौली, रावतमाल जिलों में, आन्ध्रप्रदेश के आदिलाबाद जिले के सीमावर्ती क्षेत्र में, मध्यप्रदेश, ओड़िशा, झारखण्ड, ओड़िशा तथा उत्तरप्रदेश के कुछ भाग में निवास करती है। महाराष्ट्र में गोंड समाज को बोलचाल की भाषा में 'गोंडी या कोप्री' कहते हैं। गोंड में ही गोंड मीडिया आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी जनजाति है जो महाराष्ट्र के गढ़चिरौली जिले के भामरागड़-कोरची तहसील में निवास करती है। इनका एक बहुत बड़ा उत्सव-त्यौहार पौष मास की पूर्णिमा से तीन दिन तक मनाया जाता है। कोरची तहसील के 'कुमकोउ' गांव में **'माता माउली'** की पूजा के रूप में यह उत्सव मनाते हैं। कुमकोड गांव के आसपास के 60 गाँवों के पुजारी, हजारों लोगों के साथ पूजा के दिन प्रात: कुमको गांव में एकत्रित होते हैं। बड़ी शोभायात्रा निकाली जाती है जिसमें सजाई हुई पालकी; कपड़े के लाल और सफेद कमल की पंखुड़ियाँ चिपका हुआ बहुत ऊंचा बांस होता है। यह बांस शोभायात्रा के बाद माउली के स्थान के सामन गाड़ा जाता है। तीन दिन तक यह उत्सव चलाता है। आसपास की सभी जनजातियों के लोग उसमें भाग लेते हैं। उत्सव में बहुत बड़ा मेला लगता है। इस उत्सव में सम्मिलित 60 गाँवों के पुजारी इस पूजा के बाद अपने अपने गाँवों में पूजा आयोजित करते हैं। यह उत्सव जिसे मंडई कहते हैं, सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है और वर्तमान समय में भी उसी उत्साह के साथ मनाया जाता है। ❑

आदि जनजाति के उत्सव त्यौहार

- तालोम रुकबो

(जनजातियाँ उत्सवप्रिय हैं। कठिन परिश्रम के जीवन को सामूहिक नृत्य गीत एवं उत्सवों द्वारा वे सुखमय बनाते हैं। कोई भी जनजाति ऐसी नहीं है, जिसके अपने विशिष्ट उत्सव न हों। अरूणाचल की आदी जनजातियों के भी अनेक उत्सव स-विधान, साभिप्राय जीवनोल्लास से युक्त होकर संपन्न होते हैं। उनकी एक झलक यहाँ प्रस्तुत है। यह आलेख श्री तालोम रुकबो के विवरण पर आधारित है।)

1. दोरुंग (एम्पी)

दोरुंग (एम्पी) उत्सव नवम्बर-दिसम्बर में धान की नई फसल के अवसर पर शीत ऋतु में मनाया जाता है। महिलाएँ नई फसल काटकर चावल की रोटियाँ बनाती हैं। सामुदायिक भवन म्यसुप में पुरूष विष-बुझे तीर तैयार करते हैं और 2-3 दिन के लिए जंगल में शिकार करने निकल पड़ते हैं। अगले दिन उत्सव आरंभ होता है। नई चावल की चपातियों के साथ अपोंग पीने को परस्पर आदान-प्रदान के रूप में दी जाती है। युवकगण जंगल से लाए शिकार का अर्पण बुजुर्गों को पहले करते हैं, उनके प्रति सम्मान के भाव से और बुजुर्ग चावल-चपाती और अपोंग युवकों को उसके बदले देते हैं। वस्तुत: यह आदर, प्रेम और शुभकामनाओं का आदान-प्रदान है, जो बड़ों और युवाओं के बीच होता है। एम्पी दोरुंग धान की नई फसल का त्यौहार है।

2. आरन (यून्यिंग)

यह आदियों का नव वर्ष का त्यौहार है, जो फरवरी-मार्च में मनाया जाता है। उत्सव की तैयारियाँ एक माह पूर्व से होने लगती हैं। चूहे एवं गिलहरियों के पकड़ने के जाल बनाये जाते हैं। पुरुष शिकार और मछली पकड़ने के लिए जाते हैं। माँ-बहिनें बच्चों और परिवार के सदस्यों के लिए नए कपड़े तैयार करती हैं। एक सप्ताह पूर्व बच्चे चारों और याकजोंग नृत्य करते हैं, जिससे गांव के लोगों को उत्सव के आने की सूचना मिलती है। उत्सव में भोज के लिए चावल एकत्र किया जाता है। उत्सव की तिथियों की घोषणा होते ही शिकारी, शिकार लेकर वापिस आते हैं। कुछ युवक जंगल में रह जाते हैं जो उस दिन प्रात:काल ही शिकार लेकर लौटते हैं। फिर उत्सव शुरू होता है। सबको खाना बाँटा जाता है। याकजोंग नृत्य होता है। प्रत्येक घर से उपहार एकत्र किया जाता है। इस प्रथम दिन को डोरप लोंजे कहते हैं।

दूसरे दिन मिथुनों की बलि दी जाती है। जो सबको बाँटा जाता है। स्त्रियाँ चावल की चपातियाँ बनाती हैं,ये भी मिथुन के माँस के साथ बाँटी जाती हैं।

तीसरा दिन लुगांक दिन होता है, जिसका अर्थ है पशुओं का दिन। पालतू पशुओं की समृद्धि के लिए विशेष देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। हर घर में मंत्रों का उच्चारण अनुष्ठान होता है। बड़े और युवा अलग-अलग वर्गों में अगम डेलोंग नृत्य करते हुए गांव का चक्कर लगाते हैं तथा पशुओं और मानवों के स्वास्थ्य के लिए देव-देवियों की शुभकामनाएं वितरित की जाती हैं।

अंतिम दिन गमरूक दिवस होता है। इस दिन पूजा की समस्त प्रत्यक्ष सामग्री जंगल में विसर्जित कर दी जाती है। फिर कुछ शांति का समय होता है, इसमें विवाह-शादियों की बातचीतें चलती हैं। बच्चे याकजोंग नृत्य से खाने की वस्तुएं एकत्र करते हैं, यदि कोई उनका मजाक या अपमान कर देता है वे उससे जुर्माना वसूल करती हैं। यदि किसी व्यक्ति ने किसी खोई हुई वस्तु को अपने घर मे रख लिया हो तो वहाँ जाकर उस पर जुर्माना लगाती हैं। इस प्रकार आरान त्यौहार खाने-पीने और ह्रास-परिहास, खेलकूद का पर्व है। ऊपरी भाग में बारी गीत की प्रतियोगिताएं होती हैं जिसे न्यान्यी मीते

(शीतऋतु) के विशेषज्ञ दल करते हैं। युवाओं के लिए यह प्रकार का विद्यालय बन जाता है, जिससे वे अपनी संस्कृति और साहित्य को सीख सकते हैं।

3. मोपुन/मोपिन

आदियों के पदम मिन्योंग वर्ग में इस उत्सव को मोपुन और गैलोंग वर्ग में मोपिन कहते हैं। यह अप्रैल में मनाया जाता है। फसल पक कर खूब धान आये इसलिए यह उत्सव भूमि शोधन के लिए है, इसमें धान्य की देवी को अधिक उत्पादन के लिए दैवी रक्षक से बीमारी एवं महामारियों से बचाने के लिए प्रार्थना की जाती है। चावल, चपाती, अपोंग तथा मांस समर्पित किया जाता है।

सायंकाल मोपुन डालोंग म्यूसुप में युवाओं द्वारा सम्पन्न होता है। इसमें विशेषज्ञ गायक धान्य की देवी से कैसे मनुष्य धान्य प्राप्त किया, इसकी कथा का गान होता है। पदम मिन्योंन वर्ग में इसमें स्त्रियाँ भाग नहीं लेती।

गालोंग वर्ग में भी मिथुन की बलि दी जाती है और इसमें स्त्रियाँ भाग लेती हैं। पुजारी मोपिन के गीत गाता है, दिन और रात तक, जब तक वह कथा पूरी न हो जाये। पुजारी के साथ नृत्य करते हुए लोग मोपिन का आशीर्वाद बाँटते हुए घूमते हैं। लड़के और लड़कियाँ मिलकर नाचते हैं।

4. टापु

इधर मोपिन उत्सव समाप्त हुआ उधर टापु उत्सव आया। परन्तु यह प्रति तीसरे वर्ष होता है। यह एक युद्ध नृत्य है। जो शरीर से कीटाणु एवं बीमारियों को निकालने के लिए किया जाता है। साथ ही इसका उद्देश्य गांव एवं पृथ्वी के पर्यावरण को शुद्ध करना होता है। इसमें गाँव के प्रत्येक पुरूष को युद्ध का वेश तथा मालाएँ पहनकर भाग लेना अनिवार्य होता है। कोई बीमार जैसा व्यक्ति इसमें आगे रहता है। म्यूसुप में एकपूजा वेदी बनाई जाती है। तब नृत्य आरंभ होता है, जो म्यूसुप के दस चक्कर लगाता है। फिर नृत्य घनीभूत होकर वेदी के चारों ओर 5 चक्कर में पूरा होता है। इस बीच एक व्यक्ति चींटी के बिल में से चींटी निकालकर उसके गुच्छे चुपचाप नर्तकों के सिरों पर डाल देता है। इसका अभिप्राय यह है कि इस गाँव की आबादी भविष्य में चीटियों के सामने बढ़े। तभी वेदी से पुजारी घर और गाँव की देवी गुमिन सोयिन को प्रसन्न करने के लिए उच्च स्वर से गीत गाता है और देवी रक्षक देव डोपिंग बोटे से प्रार्थना करता है कि गाँव में अधिक बालक हों, जो स्वस्थ्य भी हों। उस समय नेतृत्व करने वाला व्यक्ति 5 चक्कर पूरा होने पर अपने तीर से एक बाज को बिद्ध करता है ओर सभी लोग जंगल पत्तियों से बनी ढालों के नीचे उस मृत बाज को दबा देते हैं। फिर से अपनी ढालों को उठाकर नाचते हुए वे समाधियों पर जाते हैं और वहाँ ढालों को फेंककर गाते हए वापिस आते हैं। कुछ देर विश्राम के अनन्तर वे पुनः विदाई का नृत्य 'कायो डेलांग' करते हैं। यहीं टापू उत्सव समाप्त होता है।

5. ऐटोर

यह ग्रीष्मकालीन उत्सव मई-जून में झूम खेती में बाड़ लगाने के बाद मनाया जाता है। इसमें केवल पुरुष भाग लेते हैं। यह तीन भागों में विभक्त होता है। येगुल दिवस, गम्पू दिवस और लुगांक दिवस। पहले दिन सामुदायिक भोज होता है, जिसमें घर-घर से भोज्य सामग्री और अपोंग दी जाती है। डेलांग नृत्य भी होता है। लुगांक दिवस घरेलू पशुओं की रक्षा के लिए दादी-बोटे की पूजा का दिन है। युवक अमग डोलोंग नृत्य करते हैं। इस उत्सव के अपनी विशिष्ट सामाजिक नियम है।

6. सोलुंग

दिसम्बर माह में पतझर के अवसर पर धान की खेती के समय यह रंगीन उत्सव मनाया जाता है। उत्सव की तैयारी एक मीरी गायक के द्वारा की जाती है, जो लड़कियों के द्वारा वृद्ध पुरूषों के निर्देशन से होता है। इसे इंजिंग कहते हैं। लड़कियाँ प्रति सायं उसके घर जाती हैं और धान से चावल निकालने की उसकी सेवा करती हैं। वे दानें एकत्र करती हैं कि मीरी को उसकी सेवा के बदल दे सकें। एक माह पूर्व से ही कमर में तमक पट्टी बाँधकर

लड़कियाँ काम करती हैं। मीरी के माथे रिडिन लता के फूल बाँधे जाते हैं।

अली अये लिगांग

आवियों की उपजनजाति मिशिंग का यह त्यौहार पूर्वी सियांग जिले का महत्वपूर्ण उत्सव है।

फरवरी के महीने में झू की सूखी खेती के लिए बीज बोने से पूर्व मिशिंग इस त्यौहार का मनाते हैं और इसके माध्यम से धान्य की देवी के वी अच्छी फसल के लिए पूजा करते हैं। गाँव के बाहर किसी पवित्र स्थल पर वेदी बनाई जाती है, जिसमें पत्तियों और शाखाओं को प्रयोग होता है। पुजारी पूजा का विधान करता है, सभी ग्रामीण इसमें सम्मिलित होते हैं।

इस त्यौहार का नृत्य लिगांग पाकासौंग नाम से जाना जाता है जिसमें युवक और युवतियाँ साथ नाचते हैं। यह नृत्योत्सव 3-4 दिन चलता रहता है और नृत्य दल एक गाँव से दूसरे गाँव जाता है और उपहार एकत्र करता है। इसक अन्तिम दिन पोरक कहलाता है, जो विदाई समारोह जैसा है।

अन्य उत्सव

पाइम (यागे)

कुछ अन्य छोटे उत्सवों में पाइम या यागे हैं जो वर्ष का पहला त्यौहार है और अक्टूबर में विषैले जीव जन्तुओं, सर्प आदि से मुक्ति पाने के लिए मनाया जाता है, जिससे शीतकाल मेंलोग निर्विघ्न होकर विचरण कर सकें। यह केवल एक दिन का होता है। सान्ध्यकाल में बड़े लोग और औरतें मछली मारने जाते हैं और लौटते समय अदरख के पत्ते लेकर आते हैं और उन्हें दरवाजों पर लगाते हैं।

एटिंग

आरन त्यौहार से पूर्व 6 दिन का यह ऐटिंग उत्सव होता है। ऐटिंग का अर्थ ही है चावल की रोटी। यह उसी की तैयारी का उत्सव है। इन दिनों के नाम है रिक्ति, पैटपम, पैलेन, ओके, रोटे और रोमेंग।

ऐशो डोरुंग

प्रत्येक पाँच वर्ष बाद यह त्यौहार अक्टूबर के महीने में पासी,पदम, सिलांग कोमकर, पांगी और सियांग क्षेत्रों में भी मनाया जाता है। यह उह उत्सव इस संदर्भ में आरंभ हुआ कि महामारी से सभी मिथुन न मारे जायें अत: इस उत्सव के अधिकाधिक मिथुन पाँच-सात दिन तक मारे और खाये जाते हैं। इन दिनों स्नान तक नहीं यिका जाता। चिल्लाना और गाना भी वर्जित है। इसका अन्तिम दिन मेमित एंड कहलाता है, जब पुरूष एक दिन के शिकार के लिए जाते हैं और उत्सव समाप्त हो जाता है।

रोजा

रोजा आदियों को एक बड़ा और महत्वपूर्ण त्यौहार था परन्तु यह अधिक खर्चीला और शान शौकत वाला था। समुदाय के साथ वह दो दिन मनाया जाता था। अब यह त्यौहार बहुत कम हो गया है।

जब तानी (प्रथम मानव) ने अन्य सभी के ऊपर अपना वर्चस्व प्राप्त कर लिया तब अपना अधिकार प्रदर्शित करने के लिए इसने यह उत्सव मनाया। अब भी जो अपने आपको सर्वाधिक समृद्ध समझते हैं वे व्यक्तिगत रूप से संपूर्ण समाज में, जीवन में एक बार यह उत्सव आयोजित कर अपनी महत्ता प्रदर्शित करते हैं और अधिकतम मिथुन, सूअर, बाज, चावल, अपोंग पेय आदि समुदाय में वितरित करते हैं। तीन चार दिन तक वह पूरे समुदाय और अतिथियों की बिना कुछ लिए पूरे प्रबंध के साथ सेवा करते हैं।

इस उत्सव में उत्सवकर्ता और उसका परिवार बहुमूल्य मालाएं पहनता है। समस्त समुदाय के सहयोग से उत्सव सफल होता है और उत्सवकर्ता को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अब यह उत्सव समाप्त प्राय ही है इसकी केवल कथाएं ही रह गई हैं।

ऐसा ही एक और उत्सव भी था जिसे किमू कहते थे, परन्तु वह तो अब कहीं मनाया ही नहीं जाता। ❑

राजस्थान की जनजातियों के पर्व एवं त्यौहारों की विशेषताएं

- राधिका लड्ढा, उत्तर क्षेत्र महिला प्रमुख ,कार्यकारी अध्यक्ष - राज.

यद्यपि राजस्थान की पहचान वीरों की भूमि, बलिदानियों की भूमि, त्याग, तपस्या, भक्ति की भूमि के नाम से है किंतु राजस्थान को उसके वासी **म्हारो रंगीलो राजस्थान** कह कर पुकारते हैं। उच्चतमण जीवनमूल्यों के साथ दुनियाभर में फैले ये मारवाड़ी कहलाने वाले राजस्थानी अपनी आन-बान-शान के लिये मशहूर तो है ही, अपनी अलग पहचान भी रखते हैं। राजस्थान के एक छोर पर भीषण रण प्रदेश है तो दूसरी ओर भारत के सबसे पुरातन पर्वत 'पारियात्र' या अरावली का विराट फैलाव। इस अरावली पर्वत की गिरिकंदराओं में बसते हैं लगभग 90 लाख जनजाति के लोग या कह ले 'वनवासी'। ये अरावली की घाटियाँ कैसी हैं?

कंद-मूल-फल से समृद्ध दर्रे,
टेसू-पलाश के फूलों से सुरभित घाटियाँ,
बांस की प्रचुरता से भरा बांसवाड़ा और प्रतापगढ़,
साग-सागड़ा-शीशम से सजे सादड़ी और सागवाड़ा,
खेर वन से आच्छादित खेरवाड़ा और डुंगरपुर,
बेर-केर-जामुन-सीताफल से लदा अर्बुदाचल और सिरोही,
महुए, आम की बहुतायत वाला सहरिया क्षेत्र कोटा-बारां-झालावाड़,
घाटों, घाटियों, टेढे-मेढे घुमावदार रास्तों, अभयारण्यों,
प्राकृतिक जल-प्रपातों, झील-झरनों-तालाबों,
औषधियों, वनस्पतियों, जड़ी-बूटियों,
अनेक प्रजातियों के जीवों-जलचर-नभचर-वनचर,
धुणियों, देवारों, तीर्थस्थलों, विविध खनिजों,
संगेमरमर और प्राकृतिक ऊर्जा स्रोतों से वैभवशाली क्षेत्र ...... यानि दक्षिणी राजस्थान!

इस प्राकृतिक सम्पदा से लबरेज क्षेत्र में निवास करते हैं। भील, मीणा, गरासिया, सहरिया और कथौड़ी जनजाति के लोग जो है-

चटकीले रंग-बिरंगी परिधानों के शौकीन!
मेले-उत्सव-गीतों के शौकीन!
साज-सज्जा-श्रृंगार के शौकीन!

प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वनवासी आत्मसंतुष्ट एवं प्रसन्न रहते हैं। रोजमर्रा की नीरस, जी-तोड़ मेहनतकश दिनचर्या से कुछ अलग करके जीते हैं। इस अलग को हम नाम देते हैं, 'त्यौहार और पर्व' जिन्हें वे उत्साह, उमंग और उल्लास से मनाते हैं। समूह में मिलते हैं, मीठा खाते हैं, नया पहनते हैं और ढोल-नगाड़े बजा कर नाचते-गाते हैं। इनके त्यौहार केवल आमोद-प्रमोद के लिये नहीं होते। इनके पीछे विज्ञान होता है, कुछ संस्कार होते हैं, कुछ तर्क होते हैं और सबसे बड़ी बात ये हर त्यौहार में भगवान को अवश्य शामिल रखते हैं, बल्कि केन्द्र में रखते हैं। व्रत-उपवास रख कर उनको रिझाते हैं कि हमारे परिवार का, समाज का, देश का, मंगल हो। तो आइए ! राजस्थान के वनवासी क्षेत्र में मनाये जाने वाले प्रमुख त्यौहारों की विशेषताओं को जानें :-

दीपावली :

पूरे देश में मनाई जाने वाली दीपावली वनवासी क्षेत्र में भी सबसे बड़े त्यौहार के रुप में मनाई जाती है। महालक्ष्मी पूजन का यह पर्व बच्चे-बूढ़े-जवान, सब में नया जोश और उत्साह भर देता है। हर कोई अपनी कुटिया को स्वच्छ कर नई मिट्टी से लेपते है, नया रंग-रोगन कर, रंगोली, फूल-पत्तियों से उसे सजाते हैं। मीठे पकवान बना कर लक्ष्मी माता को अपने घर पधारने की प्रार्थना

करते हैं। दीपक जला कर उजाला करते हैं। जिस घर में उस वर्ष में नया विवाह हुआ है तो नव विवाहित को दीपावली आणा करवाने एक बार पुन: उसका पति दूल्हे की भांति सज-धज कर ससुराल जाता है और मायके में रह रही नव पत्नी को लिवा लाता है। ससुराल में मान मनुहार गोठ तो होती ही है विदाई में उसका ससुर एक तांबे का मेरिया (दीपक) देता है जिसे दुल्हा कमरखेस में बांध कर दुल्हन सहित घर आता है। दीपावली के दिन यह दुल्हन स्नान कर, सुंदर वस्त्र आभूषण से सजती है, सास-ससुर आदि के पांव लगती है। जब संध्या वेला आती है तब दुल्हा अपनी कमर में बंधा मेरिया निकालता है। घर की देहलीज पर उस मेरिये को हाथ में ले कर खड़ा हो जाता है। घर के अंदर की गृहलक्ष्मी नववधू चूडियाँ खनकाती, पायल की झंकार करती हाथ में घी और बाती ले कर आती है, रुई के फोहे ये पांच या सात बार पति के हाथ में रखे मेरिये (दीपक) में घी या तेल पूरती है और फिर दोनों मिलकर उस दहलीज पर नूतन दीप जलाते हैं। कितनी सुंदर कल्पना। एक-दूसरे को कुछ भी न कहते हुए भी जैसे बहुत कुछ व्यक्त कर देते हैं, जैसे 'हे नववधू! तुम्हारे बिना मेरे घर में अंधेरा ही था, तुम प्रेम का तेल पूर मेरे इस रीते संसार में (मेरिये में) रंग भर दो। मूक वधू की मौन उर्मियाँ अभिव्यक्त होती हैं,' 'हे प्रियतम! तुम जब जब भी यूं देहलीज पर आकर मुझे प्रेम से पुकारोगे, मैं अंदर से दौड़ी चली आउंगी और तुम्हारे सारे दिन की थकान को मीठी मुस्कान और अंतर के प्रेम से मिटा दूंगी।' और जब यह संकल्प पुख्ता हो जाता है तो दोनों मिल कर जीवन-ज्योत जला उजियार करते हैं। केवल घर में नहीं, बाहर भी क्योंकि जो दीप दहलीज पर जलता है, वह भीतर बाहर दोनों ओर उजाला करता है। तुलसीदास जी भी कहते हैं ना:

रामनाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर-बाहरे, जो चाहसी उजियार।।

खेंखरा:

नाथद्वारा नगर में भगवान श्रीनाथ का भव्य मंदिर है जो कि पुष्टीमार्गीय वैष्णवों का प्रमुख तीर्थ है। दीपावली के दूसरे दिन श्रीनाथ जी के मंदिर में अन्नकूट महोत्सव मनाया जाता है। इस अन्नकूट में सवा-सौ मण पकाये हुए चावल का पर्वत बनाया जाता है। कई-कई प्रकार के व्यंजनों का भोग लगता है। यह सायं कालीन कार्यक्रम होता है जबकि दिन में गोवर्धन पूजा महोत्सव होता है जो भगवान कृष्ण की गोर्वधन लीला की याद दिला देता है। सायं जब भगवान के भोग लग जाता है तो सर्वप्रथम यह अन्नकूट प्रसाद का अधिकार भीलों का होता है। दूर-दूर के गाँवों से हजारों भील झुंड मिल कर आते हैं और चांवल प्रसादी की लूट होती है। जिसकी जितनी श्रद्धा, जितना सामर्थ्य, उतना प्रसाद उसकी पोटली में। इस प्रसादी को केवल उसी दिन खाना ऐसा नहीं, वे उन चावलों को सूखा देते हैं और पूरे वर्ष भोजन से पूर्व थोड़ा प्रसाद ले कर ही भोजन प्रारंभ करते हैं।

इतिहास कहता है कि मुगलों के समय में हिन्दुओं पर अत्याचार तो होते ही थे। उनके भगवान के मंदिरो को ध्वस्त करना और मूर्तियों को खंडित करना यह आम बात थी। ऐसे में हिन्दुओं ने भगवान की रक्षा के लिये कई मूर्तियों को धरती में गाड़ कर रख दिया था।

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के स्वप्न दर्शन के आधार पर जब गोवर्धन पर्वत में दबे श्रीनाथ जी प्रकट हुए तो उनकी रक्षा का संकट आया। औरंगजेब के आतंक से आक्रान्त किसी राजा ने उनको रखने की हिम्मत नहीं की। केवल मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने अपने राज्य में श्रीनाथजी को लाने और मंदिर बनाने का आश्वासन दिया। वीर भीलों के सैन्य से रक्षित श्रीनाथजी मेवाड़ पहुंचे। भीलों ने प्राणों की बाजी लगाकर भी भगवान को मेवाड़ में ले आने का वचन निभाया। तभी से यानि लगभग 500 वर्षों से अन्नकूट का प्रसाद सर्वप्रथम ग्रहण करने का अधिकार

उन्हें मिला है। इसलिये कहा जाता है :

जात पात पूछे ना कोई।
हरि को भजे सो हरि को होई।

दीपावली के दूसरे दिन यानि कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को वनांचल में 'खेंखरा' नाम से संबोधन करते हैं। इस दिन अपने गाय और बैलों को नहला-धुला कर उनके सींग रंगते हैं, पूरे बदन पर रंग बिरंगे चित्र बनाते हैं, भिन्न भिन्न प्रकार के धागों में गुंथी हुई कौड़ी, कांच, मोर पंख और चिरमी की लड़ियां सींगो पर बांधते हैं। गले में घुंघरू, घंटियाँ आदि बांधते हैं। गायों को इधर उधर दौड़ाकर खेल करते हैं। गांव के लोग अपने-अपने अच्छे हट्टे-कट्टे बैलों को लाते हैं। उनकी दौड़ें और प्रतियोगिताऐं होती हैं। सहरिया क्षेत्र में तो जिन-जिन बंधुओं की वर्ष भर में मनोकामनायें पूर्ण हुई होती है, वे सब पेट के बल धरती पर लेट जाते हैं और फिर उनकी पीठ पर से बैलों को दौड़ाया जाता है। कई लोग बैलों के गुजरने से जख्मी भी हो जाते हैं किन्तु इसको शुभ माना जाता है। भैसों और बकरियों को भी 'रमजी' यानि लाल मिट्टी से सजाया जाता है।

मनसा चौथ :

दीपावली के बाद की कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी को मनसा चौथ के नाम से मनायी जाती है। सावन महीने की चतुर्दशी से लेकर कार्तिक चतुर्दशी तक हर चतुर्दशी का उपवास कर इस पर्व पर उजमणा (उद्यापन) कराया जाता है। किसी ने कोई विशेष मन्नत रखी है तो चार वर्ष तक यह चौथ का व्रत करना होता है और अंत में मनसा चौथ के दिन उजमणा किया जाता है। इस दिन यदि आप वनवासी क्षेत्र में निकल जायें तो झुंड के झुंड नर नारी सुंदर वस्त्रालंकारों से सज हाथ में पूजा की थाली लिये महादेव-पार्वती के मंदिर की ओर भजन गाते हुए चलते हुए मिल जायेंगे। शिव पार्वती की पूजा कर परिवार के योगक्षेम की प्रार्थना करते हैं, पूरे दिन कठिन उपवास रखते हैं। परन्तु सवा मण के लड्डू बनाकर नैवैद्य चढ़ाते हैं। इसकी विशेष बात यह है कि प्रसाद को स्वयं नहीं खाना है और घर पर भी नहीं ला सकते। शाम होने से पहले पहले ये लड्डू सगे सम्बन्धियों, भक्तजन आदि में बांट देना होता है। कितनी सुन्दर परम्परा है कि जिस नैवैद्य को अपने लिये बनाया, उसे स्वयं नहीं खाकर औरों को खिलाकर आनन्द बटोरना है। जनजाति क्षेत्र में मनसा चौथ का त्यौहार बहुत ही धूमधाम और श्रद्धा भक्ति से मनाया जाता है।

मकर संक्रांति :

मकर संक्रांति को वनवासी उत्तरेण नाम से मनाते हैं जिसे गुजरात में उत्तरायण कहा जाता है। यह 14 जनवरी को नहीं बल्कि पौष माह की अमावस्या के पश्चात् आने वाले प्रथम शुक्रवार को मनाते हैं। इस त्यौहार पर वनवासी क्षेत्र की अलग बात यह है कि उस दिन युवक और बालक जल्दी उठकर 'दीवी' यानि काली चिड़िया पकड़ने जाते हैं। ठंड में खूब दौड़ धूप करके आखिर वे अनेक काली चिडियाँ पकड़कर लाते हैं। और उन्हें घी में तिल मिलाकर खिलाने के बाद गांव के मुखिया और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के यहां रख आते हैं, जहां उन्हें खूब लाड़-दुलार से खिलाते-पिलाते, रखते हैं और शाम होते होते उन्हें छोड़ते हैं। ये चिड़िया उड़कर जहां बैठती है, उससे आने वाला वर्ष कैसा होगा इसकी भविष्यवाणी की जाती है। यदि वह उड़कर जमीन पर या किसी हरे पेड़कर बैठती है तो अच्छे शगुन की पहचान होती है। यानि काली चिड़िया पकड़ने जाते हैं। ठंड में खूब दौड़-धूप करके आखिर वे अनेक काली चिड़ियाँ पकड़ कर लाते हैं और उन्हें घी में तिल मिलाकर खिलाने के बाद गाँव के मुखिया औश्र अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के यहाँ रख आते हैं, जहाँ उन्हें खूब लाड-दुलार से खिलाते-पिलाते, रखते है और शाम होते-होते उन्हें छोड़ते हैं। ये चिडियाँ उड़ कर जहाँ बैठती हैं, उससे आने वाला वर्ष कैसा होगा इसकी भविष्यवाणी की जाती है। यदि वह उड़ कर जमीन पर या किसी हरे पेड़ पर बैठती है तो अच्छे सगुन है कि

आने वाले वर्ष में अच्छी वर्षा होगी। और यदि वह किसी सूखी लकड़ी, सूखे पेड़ या पत्थर पर बैठते हैं तो यह अपशकुन माना जाता है यानि आने वाले वर्ष में अकाल का सामना करना पड़ेगा।

प्रकृति पुत्रों का इन पशु-पक्षियों के आचार-व्यवहार का बारीकी से ज्ञान होता है जो उनके संकेतों को समझ लेते हैं। एक और विशेष बात है, उस दिन घर-घर से एकत्र किए अन्न को गांव वाले साथ मिलकर पकाते हैं और साथ मिल कर खाते हैं।

धाम रोपण :-

प्रतिवर्ष माघ पूर्णिमा के दिन, जहाँ बाद में होली दहन होने वाली है, उस स्थान पर 'सेमल' पेड़ की 5 से 10 फीट लंबी हरी शाखा ला कर रोपते हैं। इस धाम रोपण से पहले मिट्टी के नये बर्तन में पानी भरकर लाल-सफेद वस्त्र से बांध कर जमीन में गाड़ देते हैं। एक चारे की 'भारी' और नारियल रखकर कुमकुम से पूजा करते हैं, घी का दीपक जलाते हैं। उल्लेखनीय है कि इस धाम को होली के तीसरे दिन यानि 'जमरा बीज' को निकालते है और फिर प्रारंभ होता है रात्रिकालीन गैर नृत्य जिसमें युवक-युवतियां, सब मिलकर होली आने तक नृत्य करते हैं।

जमरा बीज:

होली के 2 दिन बाद जो घड़ा जमीन में दबा रखा था, उस स्थान पर जल, कुमकुम और नारियल से धरती माता की पूजा कर, उस घड़े को सावधानी से निकालते हैं और उसके आधार पर अगले वर्ष का शुभ-अशुभ देखते हैं। यदि वह घड़ा एकदम खाली है तो भयंकर सूखा या अकाल पड़ने का, यदि आधा भरा है तो आधा वर्ष खराब होने का तथा उसमें पूरा पानी होने पर उत्तम वर्ष होने का संकेत माना जाता है। इस दिन से तैयार हुई फसल को कूटना, साफ करना प्रारंभ करते हैं।

होली व धुलंडी :

होली तो वनवासियों का अत्याधिक प्रिय त्यौहार है। रोटी चुपड़ी मिले या फाके पड़े, तन पर नये वस्त्र सजे या तार-तार कुर्ते से बदन ढके, परन्तु इन दिनों नाचना-गाना, पीना-पिलाना आदि भरपूर होता है। खेलने को रंग ना मिले तो कीचड़ और कोयला ही सही, स्नेह से एक-दूसरे की शक्लें बिगाड़ने का आनंद तो केवल वनवासी ही लूटते हैं। गाँव के आबाल वृद्ध सभी होली जलाने एकत्र आते हैं। होली की पूजा करते हैं, नारियल होम करते हैं, लोटे से जल की धार गिराते गिराते होली की परिक्रमा करते हैं और जो नया धान पका उसकी बालियाँ, हरे चने की डालियाँ आदि होली की आग में सेकने के बाद ही उपयोग में लाते हैं। पिछली होली से इस होली के बीच जन्म लेने वाले बच्चों को नये पीले वस्त्र, बांस का सेहरा आदि बांध दूल्हे की तरह सजाते हैं और होली के सात फेरे फिराते हैं जिससे कि उस पर आने वाले अनिष्टकारी संकट टल जायें। तत्पश्चात होली के चारों ओर नृत्य गान होता है और बच्चे के नाम की प्रसादी बांटी जाती है। इस सारी प्रक्रिया को 'ढूँढ़' कहा जाता है।

दशादाम :

यह त्योहार होली के बाद आने वाली दशमी को मनाया जाता है। सुबह ब्रह्म मुहूर्त में ही सुहागिन स्त्रियाँ सज-धज कर किसी पीपल वृक्ष के पास एकत्र आती हैं, पीपल की पूजा कर पांच या सात बार हाथ में कच्चे सूत की पूनी ले कर परिक्रमा करती हैं और पीपल के सूत लपेटती जाती हैं। एक जनेउ जैसी माला पहनती है जो पूरे वर्ष रखी जाती है। झुंड में बैठ कर दशामाता की कहानियाँ कहती हैं कि कैसे सेवा-पूजा के अनादर से जीवन की दशा बिगड़ती है और श्रद्धा-भाव से करने से संवरती है। प्रकृति पूजक भोले वनवासी यह तो नहीं जानते कि पीपल के सानिध्य में रहने से उनकी प्राण ऊर्जा बढ़ती है परन्तु उनके पूर्वजों ने जो सिखाया उस परंपरा को निभाये जा रहे हैं। स्त्रियां व्रत तो रखती ही हैं, पीपल के पास रहने वाले जीव-जंतु जैसे चींटी, मकोड़े आदि को

आटे-शक्कर की कुलेर खिलाती हैं और पति की लंबी उम्र की कामना करती हैं।

गवरी उत्सव :

'गवरी' शब्द 'गौरी' का अपभ्रंश है। माता 'गौरी' या 'पार्वती' के सम्मान में यह एक महीने, भाद्रपद कृष्णपक्ष एकम से ले कर आश्विन कृष्ण पक्ष एकम् तक, चलने वाले इस उत्सव की स्वीकृति भोपे के शरीर में उतरने वाले पूर्वजों की आत्मा ही देती हैं। इस लोक-उत्सव में शिव-पार्वती, भंवरा-भंवरी, भयावड़ बाबा (भस्मासुर), गोमा मीणा, अम्बाव और कालूकीर, खड़लिया भूत और खेतूड़ी, नार (शेर) और कालका माता, बादशाह और भीलूराणा, नटनी और जमाई, वणझारा और दाणी, वणझारा और कांडी, आदि-आदि मुख्य पात्र होते हैं जिनके इर्द-गिर्द लोक कथाएं गूंथी होती हैं जिन्हें लोक कलाकार संवाद, अभिनय, गीत, संगीत के माध्यमों से रोज अलग-अलग गाँवो में, गाँव की चौपालों में खेलते हैं। लगभग पूरे दिन चलने वाली इस नाट्य-लीला को देखने लोगों की भीड़ उमड़ती है।

यह गवरी एक प्रकार से नुक्कड़ नाटक ही है जिनमें कलाकार अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति से केवल लोक मनोरंजन ही नहीं करते बल्कि लोक संस्कार भी करती हैं। समय-समय पर परिवार, समाज और धर्म में उठने वाले प्रश्नों के समाधान भी सुझाते हैं।

हिन्दू धर्म में मनाये जाने वाले सभी त्यौहारों को वनवासी मनाते ही हैं परंतु इनमें से कुछ की विशेषताएं यहाँ प्रस्तुत की हैं। इन सब बातों को जानकर भी हम यदि यह कहें कि वनवासी हिन्दू नहीं है तो यह उनके लिये गाली ही होगी। इन सब से जो अनुभूति का अमृत निकलता है वह इन दो पंक्तियों में सिमटा है :-

संस्कृति सबकी एक चिरंतन, खून रगों में हिन्दू है।
विराट सागर समाज अपना, हम सब इसके बिन्दू हैं।।

शोक संवाद......

विश्वनाथजी नारसरिया का दु:खद निधन

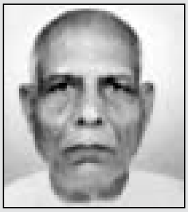

पूर्वांचल कल्याण आश्रम कोलकाता महानगर के पूर्व उपाध्यक्ष विश्वनाथजी नारसरिया का गत 27 नवम्बर 2017 को 88 वर्ष की उम्र में देहावसान हो गया। वे बाल्यकाल से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निष्ठावान स्वयंसेवक थे। वनवासी सेवा एवं संगठन कार्य में उनकी विशेष अभिरुचि थी। उनकी प्रकृति अत्यंत शांत-सरल एवं सौम्य थी। अपने स्वभाव की कोमलता, मधुरभाषिता एवं हृदय की निर्मलता से सबको अपना प्रिय बना लिया। उनके मधुर व्यवहार के कारण अनेक लोगों को कल्याण आश्रम से जुड़ने का सौभाग्य मिला। वे सभी के प्रिय 'बाबूजी' थे। वर्ष भर वनवासी सेवा कार्यों के लिए समाज बंधुओं से सम्पर्क किया करते थे। मकर संक्रान्ति पर बड़ाबाजार समिति द्वारा लगाये जाने वाले कैम्प बाबूजी की सक्रियता एवं तत्परता के कारण अतीव सफल रहते थे। सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्र प्रेम के सभी कार्यों के प्रति उनकी सहज रुचि थी। वे अपने पीछे 1 पुत्र और 3 पुत्रियाँ छोड़ गये हैं। उनका पूरा परिवार कल्याण आश्रम एवं सेवाकार्यों के प्रति समर्पित है। उनका देहावसान निश्चय ही सभी के लिए अपूरणीय क्षति है। उनके अवशेष कार्यों को नि:शेष करने की दिशा में प्रयास करना और सद्गुणों को धारण करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी। ईश्वर के चरणों में यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे एवं परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति दें। दिवंगत आत्मा के चरणों में अश्रुपूरित श्रद्धांजलि!

नागा जनजाति जेलियांगरोंग हेरक्का का प्रमुख त्यौहार

-मोहनलाल दास, नगरीय कार्य प्रमुख, नागालैण्ड

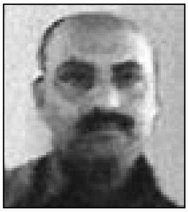

भारत एक विशाल देश है। भारत के उत्तर पूर्वांचल के सातों राज्यों में एक राज्य नागालैण्ड है। यहां नागा जनजाति के वनवासी बन्धु निवास करते हैं। उनकी अपनी संस्कृति, भाषा, उत्सव एवं परम्पराएं हैं। उनमें से एक जेलियांग रोंग हेरक्का समाज है जो प्रकृति के उपासक हैं। यह समाज पंचभूत को मानने वाला है तथा निसर्ग का पुजारी हैं। ईश्वर निराकार है अत: उसकी मूर्ति पूजा की प्रथा नहीं है किन्तु जनजाति समाज में नदी (जल) पहाड़ (मिट्टी, जमीन) पेड़ आकाश एवं सूर्य और चाँद को किसी न किसी माध्यम से पूजने का प्रचलन है और आज तक पूजते आ रहे हैं। यह समाज अपने सर्वश्रेष्ठ भगवान सर्वोपरि 'तिग्वांग' को मानता है। यह विश्वास है कि वह किसी न किसी रूप में सभी का सहायक है। सभी की रक्षा करता है और सभी जगह विद्यमान है। यह जनजाति समाज कोई भी शुभ कार्य करने के पहले या पश्चात ईश्वर की उपासना करता है। इनके मुख्यत: पाँच त्यौहार हैं जो ये बड़े धूमधाम एवं हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं।

हेलेइंग्ही

यह वर्ष का पहला उत्सव है जो मार्च मास में मनाया जाता है। यह पूजा उत्सव खेतों में धान के फसल लगने के पूर्व मनाते हैं। इसके मनाने का अर्थ यह है कि खेतो में अन्न (धान) की खेती अच्छी हो। यह त्यौहार तीन दिन तक मनाया जाता है तथा इस त्यौहार के समाप्ति के बाद ही हेरक्का समाज अपने अपने खेतों में अन्न का बीज बोना प्रारंभ करते हैं।

इन्याग्वी

इस त्यौहार को मई माह में मनाते हैं। जो वर्ष का दूसरा त्यौहार है। जब खेतों में सारा धान पककर तैयार हो जाता है तो उसके बाद यह त्यौहार मनाते हैं। इसकी मान्यता यह है कि धान (अन्न) की फसल अच्छी हो, फसल को किसी भी प्रकार नुकसान न हो। यह त्यौहार बीते हुए माह की विदाई के धन्यवाद और आने वाला दिन का शुभ संकेत अभिनंदन (स्वागत) का सूचक है। त्यौहार के दिन नियमों की पालन करते हैं। पहला दिन सभी लोग तिंग्वांग (अपने आराध्य देव) का पूजन करते हैं। इस दिन मातायें अपनी बेटियों को भोजन (अन्नदान) कराकर ससुराल भेजती हैं। उनकी बेटी अपने मायके में (माँ के घर) विनिमय (बदले में) स्वरूप सब्जी एवं राइस बीयर भेजती है। गांव के बड़े बुजुर्ग धर्मशाला में इकट्ठा होकर हर्षोल्लास मनाते हैं जो इनकी भाषा में 'हांगसेउकी' कहते हैं।

पौकपेटग्नी

यह त्यौहार अगस्त माह में मनाया जाता है। यह दो दिन का उत्सव है। खेत में फसल कटाई के पूर्व मनाया जाता है। इसकी मान्यता यह है कि फसल अच्छी हो, किसी प्रकार से अनिष्ट न हो। इस भाव से यह त्यौहार मनाते हैं।

अंसिम्न्गीं

यह उत्सव युवक-युवतियों द्वारा मनाया जाता है। यह प्रेम एवं सौहार्द्र का प्रतीक माना जाता है। इस उत्सव में युवक-युवतियाँ का आपस में नृत्य गीत के साथ खाने पीने की प्रथा है।

हेगांगी

यह वर्ष का अन्तिम त्यौहार व उत्सव है एवं सबसे बड़ी पूजा मानी जाती है। एक मान्यता इस प्रकार भी है कि गत वर्ष (बीते हुए) जो भी हुआ वह अच्छा ही हुआ यह मानकर तिग्वांग देव को धन्यवाद देते हैं।अन्न ग्रहण (भोजन) भी एक साथ मिलकर करते हैं और साथ में दिउजाक भी प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं और आनन्द के साथ नृत्यगीत करते हुए आनन्दानुभूति करते हैं। ❑

कविता

आनन्द

आनन्द मगन मुझे रहना है;
मुझे प्रेम नगर में बसना है;
मुझे गीत खुशी के गाना है
और छक-छक के अमृत पीना है।

आनन्द न होता धरा पर तो
कोई कहो क्यों जीता यहाँ?
आकाश न होता आनंदमय तो
पंछी नभ में उड़ते क्यों?
आनन्द न होता जल में तो
मछरिया गोते लगाती क्यों?

आनन्द से अग्नि जलती है;
आनन्द से वायु बहती है;
आनन्द में तन्मय होके सदा
सूरज चन्दा भी चलते हैं।
पाथेय बना निज आनन्द को
अनन्त डगर पर चलना है।

इस पंच तत्व सृष्टि सर्जन में
सप्त स्वरी संगीत भरा।
सराबोर नित नवरस में हो
अणु-अणु नर्तन करता।
उस नर्तन का, उस नवरस को
मेरे अंग-अंग में भरना है।

ममत्व मोह की आँधी चली,
तो उड़ गया सब आनन्द सखे।
तेरा-मेरा करते-करते मैं
माया-जंजाल में डूब गया।
अब मोह निशा से जागा हूँ
नूरानी पलकें खुलने दो।

आनन्द से मेरा जन्म हुआ;
आनन्द से जीवन बेल फली।
मेरे उर-अंतर की गागर में
मधुमत्त उर्मियाँ है पलती।
अमृत सिंचित इस गागर को
छलक-छलक छलकाना है।

सुख शांति निकेतन इस मन में
अभिलाषा एक ही जगती है :
प्रेम पगी मेरी चुनरी को
कसूंबल रंग चढ़ाना है;
जड़ चेतन के कण-कण में अब
सच्चिदानंद वर्षण करना है।

बोधकथा

साधना और कार्य सिद्धि

बहुत पुरानी बात है। हस्तिनापुर के जंगल में दो साधक अपनी नित्य साधना में लीन थे। एक दिन देवर्षि प्रकट हुए। देवर्षि को देखते ही दोनों साधक बोल उठे-'परमात्मन्! आप देवलोक जा रहे हैं क्या? आप से प्रार्थना है कि लौटते समय प्रभु से पूछिये कि हमारी मुक्ति कब होगी? यह सुनकर देवर्षि वहां से चले गए।

एक महीने के उपरान्त देवर्षि वहां फिर प्रकट हुए। उन्होंने प्रथम साधक के पास जाकर प्रभु ने कहा है कि तुम्हारी मुक्ति पचास वर्ष बाद होगी। यह सुनते ही वह साधक अवाक रह गया। उसने विचार किया कि मैंने दस वर्ष तक निरन्तर तपस्या की, कष्ट सहे, भूखा-प्यासा रहा, शरीर को क्षीण किया। फिर भी मुक्ति में पचास वर्ष। मैं इतने दिन और नहीं रूक सकता। निराश हो, वह साधना को छोड़ अपने परिवार में वापस जा मिला। देवर्षि ने दूसरे साधक के पास जाकर कहा-'प्रभु ने तुम्हारी मुक्ति के विषय में मुझे बताया है कि साठ वर्ष बाद होगी'।

साधक ने बड़े सन्तोष से सांस ली। उसने सोचा, जन्म-मरण की परम्परा मुक्ति की सीमा तक ही पूर्ण होनी चाहिए। मैंने एक दशाब्दि निरन्तर तपस्या की। कष्ट सहे, शरीर को क्षीण किया। सन्तोष है कि वह निष्फल नहीं गया। इसके बाद वह और भी अधिक उत्साह से प्रभु के ध्यान में निमग्न हो गया। निरन्तर की गई साधना से ही सुफल की प्राप्ति होती है। ❑

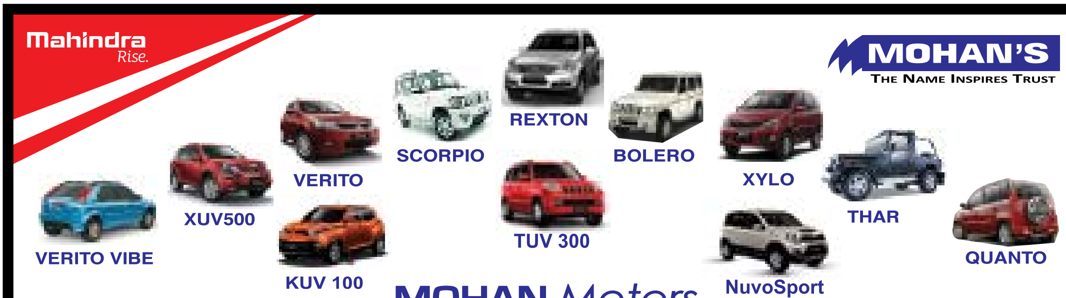

MOHAN *Motors*

Mahindra Passenger/Prosper Division

Chowringhee :55, Chowringhee Road, Kolkata - 700 071, Tel. : 033-4016 3333, Email : chowringhee@mohanmotor.in
Salt Lake :"AMBIENT" Block-AQ, Plot No. 7, Salt Lake, Sec-V, Kol-91, Ph: 4026-5555, E-mail : saltlake@mohanmotor.in
Maheshtalla : Budge Budge Trunk Road (Maheshtalla), Ph. : 4015 4444, Email : jalkal@mohanmotor.in
Howrah : Uluberia (Banitabla Howrah), Ph. : 2661 0180, Email : uluberia@mohanmotor.in
Bongaon : Vivekananda Pally, 1 No. Rail Gate, Jessore Road, Kolkata - 743 235, Phone : 8585000575
Basirhat : Taki Road, Basirhat Chawmatha, C/o Sarnakar Karat Kal, 24 Pgs(N), Mobile : 9007018026
Barasat :9/11 Jessore Road, Hatkhola More, Kol-124, Phone : 8585026834, E-mail : barasat@mohanmotor.in
Chapadanga : Vill+P.O-Chapadanga, P.S. - Tarakeshwar, Pin 712401, Phone : 8584867675
Naihati : Vill. Bora, Post-Mamudpur, Dist. 24 Pgn(N), Pin-743161, Ph. : 9007013755

Workshops at :

Baruipur : Ramnagar, P.S.-Baruipur, 24Pgs(S), Kolkata -700 144, Ph: 8420111525, E-mail : ramnagar@mohanmotor.in
Central Kolkata : Mohan Gardens, Arupota, Off E. M. Bypass, Opp. Science City, Kolkata - 700 105, Ph. : 4022 7777 / 7750 E-mail : bypass.service@mohanmotor.in
South Kolkata :B. B. T. Road, Jalkal, P.O. Maheshtalla, (Near George College of Management & Science), Kolkata - 700 141 Tel. : 4015 4444, E-mail : jalkal.service@mohanmotor.in
North Kolkata : Kalyani Express Way, Muragachha, (Opp. Surjo Nagar), Kolkata - 700 110, Ph. 85840 17340
Howrah : Kona Express Way, Truck Terminal, Howrah, Phone : 033-6458 3831, E-mail : mtblservice@mohanmotor.in
Dunlop : 101, B.T. Road,(Inside IOCL Petrol Pump) Near Handicap Hospital, Opp. ISI, Kolkata, M : 9007067515
Diamond Harbour : Diamond Harbour, Kakdip, Phone : 03174 255265, Email : dh.service@mohanmotor.in
Bongaon : Vivekananda Pally, 1 No. Rail Gate, Jessore Road, Kolkata - 743 235, Phone : 8585000575

Heavy Vehicle Division

Sales Office :1st Floor, Block-E, 9/12, Lal Bazar Street, Kolkata - 700 001, Ph. : 022624074, mtbl@mohanmotor.in
Howrah Workshop : Khejurtala, Kona Truck Terminal Complex, Kona Expressway, Howrah - 711 403, Ph. : 9007017758

HARSHIT *Hyundai*

Dhulagarh : Bombay Road NH-6, Dhulagarh, Near Alampur More, Howrah - 711 302, Ph: 90070 06652, sales@harshithyundai.com
Belur : 237/12/1 G.T Road,Belur, Howrah-711202, (Opp. Axis Bank, Belur Bazar), PH.: 85850 16625, belur@harshithyundai.com
Salap :NH6 Lalbari More, Salap Nibra, Howrah - 711 403, Phone: 033-26530161/95/96, sales@harshithyundai.com
Workshop Khajurtala: Kona Express Way, (Near Truck Terminal), Howrah - 711 403, Ph. : 8585016620, service@harshithyundai.com

Trisha # 9830416050

Printed Matter

Book - Post

If Undelivered Please Return To :

Purvanchal Kalyan Ashram
161/1, Mahatma Gandhi Road
Bangur Building, 2nd Floor
Room No. 51, Kolkata-700007
Phone : +91 33 2268 0962, 2273 5792
Email : kalyanashram.kol@gmail.com